

श्री ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र

की

उन्नीस कथाएं

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के गौतम स्वामी आदि ग्यारह गणधर हुए हैं। "उप्पएणेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा" इस त्रिपदी का ज्ञान प्राप्त कर गणधरों ने द्वादशाङ्गी की रचना की, जिसमें ज्ञान दर्शन चारित्र ये तीन मोक्ष के उपाय बतलाए गए हैं। सब शास्त्रों के मुख्य रूप से चार विभाग हैं– द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और धर्मकथानुयोग। छठे अङ्ग 'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग' सूत्र में कथानुयोग का वर्णन है।

भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधरों में से पाँचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी की ही पाट परम्परा चली है। वर्त्तमान द्वादशांगी के रचयिता श्री सुधर्मा स्वामी ही माने जाते हैं। उनके प्रधान शिष्य श्री जम्बू स्वामी ने प्रश्न किये हैं और उन्होंने उत्तर दिये हैं। उत्तर देते समय सुधर्मा स्वामी ने प्रत्येक स्थल में ये शब्द कहे हैं–हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही तुझे कहता हूँ।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि इस द्वादशांगी का कथन सर्वज्ञ देव श्री महावीर स्वामी ने भव्य प्राणियों के हितार्थ किया है। इसमें श्री गौतम स्वामी और श्री सुधर्मा स्वामी की स्वतन्त्र प्ररूपणा कुछ भी नहीं है। 'जैसा भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है वैसा ही मैं तुझे कहता हूँ' इस वाक्य से श्री सुधर्मा स्वामी ने "आणाए धम्मो" अर्थात् वीतराग भगवान् की आज्ञा में ही धर्म है और उनके वचन को विनय पूर्वक स्वीकार करना धर्म का मुख्य अंग है, इस तत्त्व का भली भांति प्रतिपादन किया है। श्री जम्बू स्वामी ने बारबार प्रश्न किये हैं। इससे यह बतलाया गया है कि शिष्य को विनयपूर्वक जिज्ञासा बुद्धि से प्रश्न करके गुरु से ज्ञान ग्रहण करना चाहिए क्योंकि विनयपूर्वक ग्रहण किया हुआ ज्ञान ही आत्मकल्याण में सहायक होता है।

जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि छठे अंग श्री ज्ञाताधर्मकथा के दो श्रुतस्कन्ध कहे गए हैं– ज्ञाता और धर्म कथा। ज्ञाता नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन में एक दृष्टान्त (उदाहरण) दिया गया है और अन्त में दार्ष्टान्तिक के साथ सुन्दर समन्वय करके धर्म के किसी एक तत्त्व को दृढ़ किया गया है। यह सम्पूर्ण सूत्र गद्यमय है। कहीं कहीं पर कुछ गाथाएं दी गई हैं। इस शास्त्र में नगर, उद्यान, महल, शय्या, समुद्र, स्वप्न, स्वप्नों के फल आदि का तथा हाथी, घोड़े, राजा, रानी, सेठ, सेनापति आदि जंगम पदार्थों का वर्णन बहुत विस्तारपूर्वक दिया गया है। कथा भाग की अपेक्षा वर्णन का भाग अधिक है। जहाँ पर पूर्व पाठ का वर्णन फिर से आया है वहाँ "जाव (यावत्)" शब्द देकर पूर्व पाठ की भलामण दी गई है।

सामान्य ग्रन्थ की अपेक्षा शास्त्र में गम्भीरता और गुरुगमता

विशेष होती है। इस लिए शास्त्र अध्ययन के अभिलाषी मुमुक्षु आत्माओं को शास्त्र का अध्ययन श्रद्धा पूर्वक गुरु के पास ही करना चाहिए। इस तरह से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही आत्म-कल्याण में विशेष सहायक होता है।

(१) मेघकुमार की कथा

पहला अध्ययन– विनय का स्वरूप बतलाने के लिए पहला अध्ययन कहा गया है। इसका नाम 'उत्क्षिप्त' है। यदि कोई शिष्य अविनीत हो जाय तो उसे मीठे वचनों से उपालम्भ देकर गुरु को चाहिए कि वह उसे विनय मार्ग में प्रवृत्ति करावे। इस प्रकार उपदेश देने के लिए पहले अध्ययन में मेघकुमार का दृष्टान्त दिया गया है।

राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम नन्दा देवी था। उसकी कुक्षि से उत्पन्न हुआ अभयकुमार नाम का पुत्र था। वह राजनीति में बहुत चतुर था। औत्पातिकी, वैनयिकी आदि चारों बुद्धियों का निधान था। वह राजा का मन्त्री था।

श्रेणिक राजा की छोटी रानी का नाम धारिणी था। एक समय रात्रि के पिछले पहर में उसने हाथी का शुभ स्वप्न देखा। राजा के पास जाकर उसने अपना स्वप्न सुनाया। राजा ने कहा–देवि! इस शुभस्वप्न के प्रभाव से तुम्हारी कुक्षि से किसी पुण्यशाली प्रतापी बालक का जन्म होगा। यह सुन कर रानी बहुत प्रसन्न हुई।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्वप्नपाठकों को बुला कर राजा ने स्वप्न का अर्थ पूछा। उन्होंने बतलाया कि यह स्वप्न बहुत शुभ है। रानी की कुक्षि से किसी पुण्यशाली प्रतापी बालक का जन्म होगा।

यतनापूर्वक अपने गर्भ का पालन करती हुई धारिणी रानी समय बिताने लगी। तीसरे महीने में रानी को अकाल मेघ का दोहद (दोहला) उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगी–बिजली सहित

गर्जता हुआ मेघ हो, छोटी छोटी बूंदें पड रही हों, सर्वत्र हरियाली हो, मोर नाच रहे हों आदि सारी बातें वर्षाऋतु की हो। ऐसे समय में वनक्रीडा करने वाली माताएं धन्य हैं। यदि मुझे भी ऐसा योग मिले तो वैभार पर्वत के समीप क्रीडा करती हुई मैं अपना दोहद पूर्ण करूँ।

धारिणी रानी की इच्छा पूरी न होने से वह प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। दासियों ने जाकर राजा को इस बात की सूचना दी। राजा ने रानी से पूछा—प्रिये! तुम्हारे दुर्बल होने का क्या कारण है और तुम इस प्रकार आर्तध्यान क्यों कर रही हो? तब रानी ने अपने दोहद की बात कही। राजा ने कहा—मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी। इस प्रकार रानी को आश्वासन देकर राजा वापिस अपने महल में चला आया। रानी के दोहद को पूर्ण करने का वह उपाय सोचने लगा किन्तु उसे कोई उपाय न मिला। इससे राजा आर्तध्यान करने लगा। इसी समय अभयकुमार अपने पिता के पादवन्दन करने के लिए वहाँ आया। अभयकुमार के पूछने पर राजा ने उसे अपनी चिन्ता का कारण बता दिया। अभयकुमार ने कहा—पिताजी! आप चिन्ता मत कीजिये। मैं शीघ्र ही ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे मेरी लघु माता का दोहद शीघ्र ही पूरा होगा।

अपने स्थान पर आकर अभयकुमार ने विचार किया कि अकाल मेघ का दोहला देवता की सहायता के बिना पूरा नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर अभयकुमार पौषधशाला में आया। अट्ठम तप (तीन उपवास) स्वीकार करके अपने पूर्वभव के मित्र देव का स्मरण करता हुआ वह समय बिताने लगा। तीसरे दिन अभयकुमार का पूर्व मित्र सौधर्म कल्पवासी एक देव उसके सामने प्रकट हुआ। अभयकुमार ने उसके सामने अपनी इच्छा प्रकट की।

देव ने कहा– हे आर्य ! मैं अकाल में वर्षाऋतु की विक्रिया (रचना) करूँगा जिससे तुम्हारी लघुमाता का दोहद पूर्ण होगा। ऐसा कह कर वह देव वापिस अपने स्थान पर चला गया।

दूसरे दिन देव ने वर्षाऋतु की विक्रिया की। आकाश में सर्वत्र मेघ छा गये और छोटी छोटी बूंदें गिरने लगीं। हाथी पर बैठ कर रानी धारिणी राजा के साथ वन में गई। वैभार पर्वत के पास वनक्रीड़ा करती हुई रानी अपने दोहले को पूर्ण करने लगी। दोहला पूर्ण होने पर रानी को बड़ी प्रसन्नता हुई।

नौ मास पूर्ण होने पर रानी की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ। दासियों द्वारा पुत्रजन्म की सूचना पाकर राजा को बहुत हर्ष हुआ। गर्भावस्था में रानी को मेघ का दोहला उत्पन्न हुआ था इसलिए पुत्र का नाम मेघकुमार रखा गया।

योग्य वय होने पर मेघकुमार को पुरुष की ७२ कलाओं की शिक्षा दी गई। युवावस्था को प्राप्त होने पर मेघकुमार का विवाह सुन्दर, सुशील और स्त्री की ६४ कलाओं में प्रवीण आठ राजकन्याओं के साथ किया गया।

एक समय भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक उद्यान में पधारे। भगवान् का आगमन सुनकर प्रजाजन, राजा और मेघकुमार भगवान् को वन्दना करने के लिए गये। भगवान ने धर्मोपदेश फरमाया। उपदेश सुन कर मेघकुमार को संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया।

घर आकर माता पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। बड़ी कठिनाई के साथ माता पिता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त की। राजा श्रेणिक ने बड़े समारोह और धूमधाम के साथ दीक्षा महोत्सव किया। मेघकुमार दीक्षा लेकर ज्ञानाभ्यास करने लगे। रात्रि के समय जब सोने का वक्त आया तब मेघकुमार का बिछौना सब साधुओं

के अन्त में किया गया क्योंकि दीक्षा में वे सब से छोटे थे। रात्रि में इधर उधर आने जाने वाले साधुओं के पादसंघट्टन से मेघ कुमार को नींद नहीं आई। नींद न आने से मेघकुमार अतिखेदित हुए और विचार करने लगे कि प्रातःकाल ही भगवान् की आज्ञा लेकर ली हुई इस प्रव्रज्या को छोड़ कर वापिस अपने घर चला जाऊँगा। ऐसा विचार कर प्रातःकाल होते ही मेघकुमार भगवान् के पास आज्ञा लेने को आये। मेघकुमार के विचारों एवं उनके मनोगत भावों को केवलज्ञान से जान कर भगवान् फरमाने लगे कि हे मेघ! तुम इस जरा से कष्ट से घबरा गये। तुम अपने पूर्वभव को तो याद करो। पहले हाथी के भव में वन में लगी हुई दावानल को देख कर तुम भयभ्रान्त होकर वहाँ से भागने लगे किन्तु आगे जाकर तालाब के कीचड़ में बहुत बुरी तरह से फंस गये और बहुत कोशिश करने पर भी निकल न सके। इतने में एक दूसरा हाथी आगया और उसके दंत प्रहार से मर कर फिर दूसरे जन्म में भी हाथी हुए। एक वक्त जंगल में लगी हुई दावानल को देख कर तुम्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। ऐसे दावानल से बचने के लिए गंगा नदी के दक्षिण किनारे पर एक योजन का लम्बा चौड़ा एक मण्डल बनाया। एक वक्त जंगल में फिर आग लगी उसमें बचने के लिए फिर तुम अपने मण्डल (घेरा) में आये। वहाँ पहले से ही बहुत से पशु, पक्षी आकर ठहरे हुए थे। मण्डल जीवों से खचाखच भरा हुआ था। बड़ी मुश्किल से तुम को थोड़ी सी जगह मिली। कुछ समय बाद अपने शरीर को खुजलाने के लिए तुमने अपना पैर उठाया। इतने में दूसरे बलवान् प्राणियों द्वारा धकेला हुआ एक शशक (खरगोश) उस जगह आ पहुँचा। शरीर को खुजला कर जब तुम वापिस अपना पैर नीचे रखने लगे तो एक शशक को बैठा हुआ देखा। तब–

पाणाणुकंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए

अर्थात्– प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों की अनुकम्पा से तुमने अपना पैर ऊपर अधर ही रखा किन्तु नीचे नहीं रखा। उन प्राण (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पञ्चेन्द्रिय जाव) और सत्त्वों (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउ-काय, वायुकाय) की अनुकम्पा करके तुमने संसार परित्त किया और मनुष्य आयु का बंध किया। अढ़ाई दिन में वह दावानल शान्त हुआ। सब पशु वहाँ से निकल कर चले गये। तुमने चलने के लिए अपना पैर लम्बा किया किन्तु तुम्हारा पैर अकड़ गया जिससे तुम एकदम पृथ्वी पर गिर पड़े और शरीर में अत्यन्त वेदना उत्पन्न हुई। तीन दिन तक वेदना को सहन कर सौ वर्ष की आयुष्य पूर्ण करके तुम धारिणी रानी के गर्भ में आये।

हे मेघ! तिर्यञ्च के भव में प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों पर अनुकम्पा कर तुमने पहले कभी नहीं प्राप्त हुए सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ति की। हे मेघ! अब तुम विशाल कुल में उत्पन्न होकर गृहस्था वास को छोड़ साधु बने हो तो क्या साधुओं के पादस्पर्श से होने वाले जरा से कष्ट से घबरा गये।

भगवान् के उपरोक्त वचनों को सुन कर मेघकुमार को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। फिर मेघकुमार ने संयम में दृढ़ होकर भगवान् की आज्ञा से भिक्षु की बारह पडिमा अङ्गीकार की और गुणरत्नसंवत्सर वगैरह तप किये। अन्त में संलेखना संथारा कर के विजय नामक अनुत्तर विमान में ३३ सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में पैदा होकर संयम लेगा और मोक्ष जायगा।

जिस प्रकार संयम से विचलित होते हुए मेघकुमार को भगवान् ने मधुर शब्दों से उपालम्भ देकर संयम में स्थिर कर दिया

उसी प्रकार गुरु को चाहिए कि संयम से विचलित होते हुए शिष्य को मधुर शब्दों से समझा कर पुन संयम में स्थिर कर दे।

(२) धन्ना सार्थवाह और विजय चोर की कथा

दूसरा संघट ज्ञात अध्ययन– अनुचित प्रवृत्ति करने वाले को अनर्थ की प्राप्ति होती है और सम्यग् अर्थ की प्राप्ति नहीं होती तथा उचित प्रवृत्ति करने वाले को सम्यग् अर्थ की प्राप्ति होती है। यह बतलाने के लिए धन्ना सार्थवाह और विजय नामक चोर का दृष्टान्त दूसरे अध्ययन में दिया गया है।

राजगृह नगर में धन्ना नामक एक सार्थवाह रहता था। उसी नगर में विजय नाम का एक चोर रहता था। वह बहुत ही पाप कर्म करने वाला और क्रूर था। एक समय धन्ना सार्थवाह की स्त्री भद्रा ने अपने पुत्र देवदत्त को स्नान मज्जन करा कर तथा आभूषणों से अलंकृत कर अपने दास पंथक के हाथ में देकर बाहर खिलाने के लिए भेजा। पंथक दास देवदत्त को एक जगह बिठा कर दूसरे बालकों के साथ खेलने लग गया। इतने में विजय नामक चोर वहाँ आ पहुँचा और देवदत्त बालक को उठा ले गया। एकान्त में ले जा कर उसे मार डाला और उसके सारे आभूषण उतार लिए। उसके मृतक शरीर को एक कुए में डाल कर मालुकाकच्छ में छिप गया। धन्ना सार्थवाह ने पुलिस को खबर दी। पुलिस ने विजय चोर को ढूंढ कर उसे कैदखाने में डाल दिया।

एक बार राज्य के कर (महसूल) की चोरी करने के कारण धन्ना सार्थवाह राज्य का अपराधी साबित हुआ। इसलिए उसे भी कैदखाने में डाल दिया और संयोगवश उसी खोडे में डाला जिसमें आगे विजय चोर था। खोडा एक होने के कारण दोनों का आना जाना, उठना बैठना एक ही साथ होता था। जब धन्ना सार्थ-

वाह टट्टी, पेशाब आदि करने के लिए जाने की इच्छा करता तो वह चोर साथ चलने से इन्कार हो जाता। तब दूसरा कोई उपाय न होने के कारण धन्ना सार्थवाह अपने भोजन में से थोड़ा भोजन उस चोर को भी देता और उसे अपने अनुकूल रखता। जब धन्ना सार्थवाह कैद से छूट कर घर आया तो अपने पुत्र की हत्या करने वाले चोर को भोजन देने के कारण उसकी पत्नी ने उसका तिरस्कार किया और उपालम्भ दिया। तब धन्ना ने उस चोर को भोजन देने का कारण समझाया और अपनी पत्नी के क्रोध को शान्त किया।

उपरोक्त दृष्टान्त देकर शास्त्रकार ने इसका निगमन (उपनय) इस प्रकार घटाया है—राजगृह नगर के समान मनुष्य क्षेत्र है। धन्ना सार्थवाह के समान साधु हैं। विजय चोर के समान शरीर है। पुत्र के समान निरुपम आनन्द को देने वाला संयम है। अयोग्य आचरण करने से इसका विनाश हो जाता है। आभूषणों के समान शब्दादि विषय हैं। इनका सेवन करने से संयम का विनाश हो जाता है। हडिबन्धन (खोडे) के समान जीव और शरीर का सम्बन्ध है। राजा के समान कर्म परिणाम और राजपुरुषों के समान कर्मों के भेद हैं। छोटे से अपराध के समान मनुष्यायु बन्ध के कारण हैं। मलमूत्रादि की निवृत्ति के समान प्रत्युपेक्षण (पडिलेहना) आदि कार्य हैं अर्थात् जिस प्रकार अपने भोजन में से कुछ हिस्सा विजय चोर को न देने से वह मलमूत्रादि की निवृत्ति के लिए धन्ना सार्थवाह के साथ नहीं जाता था इसी प्रकार इस शरीर को भोजन आदि न देने से पडिलेहणा आदि संयम क्रियाओं में सम्यक् प्रवृत्ति नहीं हो सकती। पन्थक दास के समान मुग्ध (शब्दादि विषयों में आसक्त होने वाला) सा [illegible] के समान आचार्य हैं। दूसरे साधुओं से सुन [illegible] से पुष्ट शरीर वाले साधु

उपालम्भ देने लगते हैं किन्तु उस साधु के द्वारा वेदना की शान्ति, वैयावच्च आदि कारण बतला देने पर वे आचार्य सन्तुष्ट हो जाते हैं।

जिस तरह धन्ना सार्थवाह ने दूसरा उपाय न होने के कारण अपने पुत्र को मारने वाले चोर को भोजन दिया इसी तरह साधु को चाहिए कि सिर्फ संयम के निर्वाह के लिए चोर समान इस शरीर को भोजन दे, शरीर की पुष्टि आदि किसी दूसरे उद्देश्य के लिए नहीं। जिस तरह सराय में ठहरने के लिए मकान का भाड़ा देना पड़ता है उसी तरह संयम निर्वाह के लिए शरीर को भोजन रूपी भाड़ा देना चाहिए।

(३) जिनदत्त और सागरदत्त की कथा

तीसरा अण्डक नामक अध्ययन—समकित की शुद्धि के लिए शंका दोष का त्याग करना चाहिए। शंका दोष का त्याग करने वाले पुरुष को शुद्ध समकित रत्न की प्राप्ति होती है और शंका आदि करने वाले को समकित रत्न की प्राप्ति नहीं होती। इस बात को बताने के लिए तीसरे अध्ययन में अण्डे का दृष्टान्त दिया गया है।

चम्पा नगरी के अन्दर जिनदत्त और सागरदत्त नाम के दो सार्थवाह पुत्र रहते थे। वे दोनों बालमित्र थे। क्रीड़ा के लिए उद्यान में गए हुए दोनों मित्रों ने एक जगह मयूरी के अण्डे देखे। उन अण्डों को उठा कर वे दोनों मित्र अपने अपने घर ले आये और कुक्कुटी के अण्डों के साथ रख दिये।

सागरदत्त को यह शंका हुई कि इन अण्डों में से मयूरी के बच्चे पैदा होंगे या नहीं? इसलिए वह उनको बारबार हिला कर देखने लगा। हिलाने से वे अण्डे निर्जीव हो गये। जिससे उसको अति खेद और चिन्ता हुई।

जिनदत्त ने उन अण्डों के विषय में कोई शंका न की, इसलिए

उनको हिलाया डुलाया भी नहीं, जिससे समय पर उन अण्डों से मयूरी के बच्चे पैदा हुए। फिर वह उन बच्चों को मयूरी पोषक से शिक्षित करा कर नृत्य और क्रीडाएं करवाता हुआ आनन्द का अनुभव करने लगा।

उपरोक्त दृष्टान्त देकर शास्त्रकार ने साधु साध्वी श्रावक श्राविका को यह उपदेश दिया है कि वीतराग जिनेश्वर देव के कहे हुए तत्त्वों में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि सन्देह ही अनर्थ का कारण है। जिन वचनों में निःशंक रहना चाहिए। यदि कदाचित् शास्त्र का कोई गहन तत्त्व बराबर समझ में न आवे तो अपनी बुद्धि की मन्दता और ज्ञानावरणीय का उदय समझ कर कभी विद्वान् आचार्य का संयोग मिलने पर उस तत्त्व का निर्णय करने की बुद्धि रखनी चाहिए किन्तु शंकित न होना चाहिए।

तहमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं।

अर्थात्—जो केवली भगवान् ने फरमाया है वही सत्य है। ऐसी दृढ श्रद्धा रखनी चाहिए क्योंकि तीर्थङ्कर देवों ने केवल संसार के प्राणियों के परोपकार के लिए ही इन तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। वे राग द्वेष और मोह से रहित होते हैं इसलिए उनको झूठ बोलने का कोई कारण ही नहीं है। अतः वीतराग जिनेश्वर के वचनों में निःशङ्कित और निष्कांक्षित होना चाहिए।

(४) कछुए और शृगाल की कथा

चौथा 'कूर्मज्ञात' अध्ययन—अपनी पाँच इन्द्रियों को वश में रखने से गुण की प्राप्ति होती है और वश में न रखने से अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। इसके लिए दो कछुओं और शृगालों का दृष्टान्त इस अध्ययन में दिया गया है।

वाराणसी नगरी के बाहर गंगा नदी के किनारे एक द्रह था।

उसमें दो कछुए रहते थे। उस द्रह के पास ही एक मालुकाकच्छ था। वहाँ दो पापी शृगाल (सियालिए) रहते थे। एक दिन उन दोनों ने उन कछुओं को देखा। शृगालों को देखते ही दोनों कछुओं ने अपने शरीर के सब अङ्गों को सकोच लिया जिससे वे शृगाल उनका कुछ भी नुकसान नहीं कर सके किन्तु थोड़े समय बाद ही उनमें से एक कछुए ने उन शृगालों को दूर गए हुए समझ कर धीरे धीरे अपनी गर्दन और पैर बाहर निकाले। उसके पैरों को बाहर निकाले हुए देख कर वे पापी शृगाल शीघ्रतापूर्वक वहाँ आए और उस कछुए के शरीर के अङ्गों को छेद डाला और उसे जीवन रहित कर डाला। दूसरा कछुआ, जिसने अपने अङ्ग गुप्त रखे और बाहर नहीं निकाले, पापी शृगाल उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके और वह कछुआ उस द्रह में आनन्दपूर्वक रहने लगा।

इस दृष्टान्त का उपनय बताते हुए शास्त्रकार ने बतलाया कि दो कछुओं के समान दो साधु समझने चाहिए। चार पैर और ग्रीवा के समान पाँच इन्द्रियाँ हैं। बाहर निकालने के समान शब्दादि विषय हैं। उनमें प्रवृत्ति करना राग, द्वेष रूपी दो शृगाल हैं। इन दोनों के वश में होने से संयम का घात हो जाता है। जो साधु इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्त नहीं होता वह दूसरे कछुए की तरह द्रह सुख के समान मोक्ष सुख को प्राप्त करता है और इन्द्रिय सुख में लोलुप साधु संसार सागर में परिभ्रमण करता हुआ अनन्त दुःखों को भोगता है। इस लिए साधु को इन्द्रियों के सुखों में तथा शब्दादि विषयों में लोलुप नहीं होना चाहिए।

(५) शैलक राजर्षि की कथा

पाँचवाँ शैलक ज्ञात अध्ययन—यदि किसी कारण से कोई साधु इन्द्रियों के वश में पड़ कर संयम में शिथिल पड़ जाय परन्तु फिर

अपनी भूल को समझ कर संयम मार्ग में दृढ़ हो जाय तो वह भी अपने अर्थ की सिद्धि कर सकता है इसके लिए शैलक राजर्षि का दृष्टान्त दिया गया है।

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उनके राज्य में थावच्चापुत्र नामक एक सार्थवाहपुत्र रहता था। एक समय भगवान् नेमिनाथ स्वामी वहाँ पधारे। उनका धर्मोपदेश सुन कर थावच्चापुत्र को वैराग्य उत्पन्न हो गया और एक हजार पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। भगवान् की आज्ञा लेकर थावच्चापुत्र अनगार एक हजार साधुओं के साथ अलग विहार करने लगे। एक बार विहार करते हुए शैलकपुर पधारे। वहाँ का राजा शैलक अपने पन्थक आदि पाँच सौ मन्त्रियों सहित उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए आया। प्रतिबोध प्राप्त कर उसने श्रावक धर्म अंगीकार किया।

उस समय शुक परिव्राजक एक हजार परिव्राजकों सहित अपने मत का उपदेश देता हुआ विचरता था। विचरता हुआ वह सौगन्धिका नगरी में आया। उसका उपदेश सुन कर सुदर्शन सेठ ने शौचधर्म अङ्गीकार किया।

एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए थावच्चापुत्र भी सौग न्धिका नगरी में पधारे। उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए नगर जनों के साथ सुदर्शन सेठ भी गया। उनका उपदेश सुन कर सुदर्शन सेठ ने शौचधर्म का त्याग कर दिया और विनय धर्म स्वीकार कर श्रावक व्रत अङ्गीकार कर लिये। इस बात को जान कर शुक परिव्राजक वहाँ आया किन्तु सुदर्शन ने उसका आदर सत्कार नहीं किया। इसके पश्चात् वह सुदर्शन सेठ को साथ लेकर थावच्चापुत्र अनगार के पास गया और बहुत से प्रश्न किये। उनका युक्ति युक्त उत्तर सुन कर शुक परिव्राजक को सम्यग् तत्त्व का बोध होगया और अपने हजार शिष्यों सहित थावच्चापुत्र अनगार के

पास प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। अपने धर्माचार्य श्रीथावच्चापुत्र अनगार की आज्ञा लेकर शुक निर्ग्रन्थ अपने एक हजार शिष्यों सहित अलग विहार करने लगे। कुछ समय पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार को केवलज्ञान उत्पन्न होगया और वे मोक्ष में पधार गये।

एक समय विहार करते हुए शुक निर्ग्रन्थ शैलकपुर पधारे। शैलक राजा ने अपने पुत्र मण्डुक को राज सिंहासन पर बिठा कर शुक निर्ग्रन्थ के पास पंथक आदि ५०० मन्त्रियों सहित दीक्षा अङ्गीकार कर ली और विचरने लगे। शुक निर्ग्रन्थ की आज्ञा अनुसार शैलक राजर्षि पंथक आदि ५०० शिष्यों सहित अलग विहार करने लगे। कुछ काल बाद शुक निर्ग्रन्थ को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और वे मोक्ष पधार गये।

ग्रामानुग्राम विहार कर धर्म का उपदेश करते हुए शैलक राजर्षि के शरीर में पित्त ज्वर की बीमारी हो गई। शैलकपुर के राजा मण्डुक की आज्ञा लेकर वे उसकी दानशाला में ठहर गये। राजा ने चतुर वैद्यों द्वारा उनकी चिकित्सा करवाई जिससे थोड़े ही समय में स्वस्थ हो गये। स्वस्थ हो जाने [illegible] मनोज्ञ खादिम स्वादिम आदि में मूर्च्छि[illegible] के कारण राजर्षि ने वहाँ से विहार नहीं [illegible] देख कर दूसरे सब साधुओं ने [illegible] कर एक पंथक साधु उनकी सेवा में रहा [illegible] फिर प्रतिक्रमण करके पंथक [illegible] के लिए उनके चरणों का स्पर्श [illegible] अशन पान आदि का खूब आहार [illegible] थे। पैरों का स्पर्श करने के कारण [illegible] जिससे वे कुपित हो गये। पंथक निर्ग्र[illegible] पूज्य! आज चौमासी पर्व है [illegible]

मैं आपको खमाने क लिए आया हूँ। मेरी तरफ से आपको जो कष्ट हुआ है उसक लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। पथक मुनि के उपरोक्त वचनों को सुन कर शैलक राजर्षि को प्रतिबोध हुआ और विचार करने लगे कि राज्य का त्याग करके मैंने दीक्षा ली है अब मुझे अशनादि में मूर्च्छाभाव रख कर सयम म शिथिल न बनना चाहिए। ऐसा विचार कर शैलक राजर्षि दूसरे दिन प्रात. काल ही मण्डूक राजा को उसके पीठ फलक आदि सम्भला कर सयम में दृढ हो कर विहार करने लगे। इस वृत्तान्त को सुन कर उनके दूसरे शिष्य भी उनकी सेवा मे आगये और गुरु की सेवा शुश्रूषा करते हुए विचरने लगे। बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर शैलक राजर्षि और पथक आदि पाँच सौ ही निर्ग्रन्थों ने सिद्ध पद प्राप्त किया।

इस अध्ययन के अन्त मे भगवान् ने मुनियों को उपदेश करते हुए फरमाया है कि जो साधु साध्वी प्रमाद रहित होकर सयम मार्ग में प्रवृत्ति करेंगे वे इस लोक में पूज्य होंगे और अन्त म मोक्ष पद को प्राप्त करेंगे।

(६) तुम्बे का दृष्टान्त

छठा 'तुम्बक ज्ञात' अध्ययन—प्रमादी को अनर्थ की प्राप्ति और अप्रमादी को अर्थ की प्राप्ति होती है अर्थात् प्रमाद से जीव भारीकर्मा और अप्रमाद से लघुकर्मा होता है। इस बात को बतलाने के लिए छठे अध्ययन में तुम्बे का दृष्टान्त दिया गया है।

जैसे किसी तुम्बे पर डाभ और कुश लपेट कर मिट्टी का लेप कर दिया जाय और फिर उसे धूप म सुखा दिया जाय। इसके बाद क्रमश. डाभ और कुश लपेटते हुए आठ बार उसके ऊपर मिट्टी का लेप कर दिया जाय। इसके पश्चात् उस तुम्बे को पानी

में छोड दिया जाय तो वह मिट्टी के लेप से भारी होने के कारण पानी के तल भाग में नीचे चला जायगा। पानी में पड़ा रहने के कारण ज्यों ज्यों उसका लेप गल कर उतरता जायगा त्यों त्यों वह उपर की तरफ उठता जायगा। जब उस पर से आठों लेप उतर जायेंगे तब वह तुम्बा पानी के उपर आजायगा।

तुम्बे का दृष्टान्त देकर शास्त्रकार ने यह बताया है कि इसी प्रकार जीव प्राणातिपात आदि अठारह पापस्थानों का सेवन कर आठ कर्मों का उपार्जन करते हैं जिनसे भारी होकर वे नरकादि नीच गतियों में जाते हैं। आठ कर्मों से मुक्त हो जाने के पश्चात् जीव लोकाग्र में स्थित सिद्धस्थान (मुक्ति) में पहुँच जाते हैं। अतः जीवों को प्राणातिपात आदि पापों से निवृत्ति करनी चाहिए।

(७) चार पुत्रवधुओं की कथा

सातवां 'रोहिणी ज्ञात' अध्ययन—पाँच महाव्रतों का सम्यग् पालन करने वाले आराधक साधु को शुभ फल की प्राप्ति होती है और विराधक को अशुभ फल की प्राप्ति। इस बात को बताने के लिए सातवें अध्ययन में रोहिणी आदि का दृष्टान्त दिया गया है।

राजगृह नगर के अन्दर धन्ना नाम का एक सार्थवाह रहता था। उसके भद्रा नाम की भार्या थी। उसके धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित नाम के चार पुत्र थे। इनकी भार्याओं के नाम क्रमशः उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी था। धन्ना सार्थवाह ने अपनी पुत्रवधुओं की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए सब कुटुम्बी पुरुषों के सामने प्रत्येक को पाँच २ शालिकण (छिलके सहित चावल) दिये। उनको लेकर ज्येष्ठ पुत्रवधू ने तो फेंक दिया, दूसरी ने आदरपूर्वक खा लिया, तीसरी ने बड़ी हिफाजत के साथ अपने जेवरों की पेटी में रख दिया, चौथी ने

उन शालिकणों को लेकर अपने बन्धु वर्ग को दे दिया और कहा कि वर्षा होते ही इन शालिकणों को साफ किये हुए खेत में बो देना और बड़े होने पर फिर दूसरी जगह बोना इस तरह क्रमशः बोते रहना। बन्धुवर्ग ने उसके कथनानुसार कार्य किया। इस प्रकार पाँच वर्ष बीत गये।

एक समय श्वसुर ने पुत्रवधुओं से वे पाँच शालिकण वापिस माँगे तब उन्होंने अपना अपना वृत्तान्त कह सुनाया। छोटी पुत्रवधू ने उन शालिकणों से पैदा हुए शालि धान्य के कई गाड़े भरवा कर मंगवाये और श्वसुर के सामने सारी हकीकत कही। श्वसुर ने उन चारों का वृत्तान्त सुन कर उनकी बुद्धि के अनुसार उन को काम सौंप दिया अर्थात् बड़ी बहू को घर का कचरा कूड़ा निकालने का, दूसरी को रसोई बनाने का, तीसरी को भाण्डागारिणी का यानी घर के माल की रक्षा करने का काम सौंपा और चौथी बहू को अति बुद्धिमती समझ कर उसे घर की मालकिन बनाया।

उपरोक्त दृष्टान्त देकर भगवान् ने अपने शिष्यवर्ग को सम्बोधित करके फरमाया कि जो साधु साध्वी पाँच महाव्रतों को लेकर पहली और दूसरी बहू की तरह उनका त्याग कर देते हैं या रसनेन्द्रिय के वशीभूत हो खाने पीने में ही लग जाते हैं वे इस लोक में अयश अकीर्ति का उपार्जन कर निन्दा के पात्र होते हैं और चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं। तीसरी और चौथी पुत्रवधू के समान जो साधु साध्वी पाँच महाव्रतों को लेकर सम्यक् प्रकार से उनका पालन करते हैं तथा अपने गुणों को अधिकाधिक बढ़ाते हैं वे इस लोक में विपुल यश कीर्ति का उपार्जन कर पूज्यपद को प्राप्त करते हैं और अन्त में सिद्धपद को प्राप्त करते हैं।

इस दृष्टान्त को जान कर भव्य प्राणियों को धर्म के विषय में अप्रमत्त रूप से प्रवृत्ति करनी चाहिए। *

(८) भगवान् मल्लिनाथ की कथा

आठवाँ 'मल्लि ज्ञात' अध्ययन--पाँच महाव्रतों को लेकर यदि उन्हें किञ्चित् भी माया कपटाई से दूषित कर दिया जाय तो उनका यथार्थ फल नहीं होता है। इस बात को पुष्ट करने के लिए आठवें अध्ययन में भगवान् मल्लिनाथ का दृष्टान्त दिया गया है।

भगवान् मल्लिनाथ पूर्वभव में महाबल नाम के राजा थे। उनके अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण और अभिचन्द्र नाम के छः बालमित्र थे। उन सातों मित्रों ने एक ही साथ दीक्षा ग्रहण की और यह निश्चय किया कि सब ही मित्र एक साथ एक सरीखी तपस्या करेंगे। इसके पश्चात् वे बेला तेला आदि तपस्या करते हुए विचरने लगे। आगामी भव में इन छः मित्रों से बड़ा पद पाने की इच्छा से महाबल मुनि कपट से अधिक तपस्या करने लगे। वे बेले के दिन तेला और तेले के दिन चोला कर लिया करते थे।

उन सातों मुनियों ने बारह भिक्खु पडिमा अङ्गीकार की। इसके बाद लघुसिंह निष्क्रीडित तप किया जिसकी एक परिपाटी में छः महीने और सात दिन लगे अर्थात् १५४ तपस्या के दिन और ३३ पारणे के दिन होते हैं। इसके पश्चात् महासिंह निष्क्रीडित तप अङ्गीकार किया जिसकी एक परिपाटी में एक वर्ष छः महीने और अठारह दिन लगे अर्थात् ४९७ दिन उपवास के और ६१ पारणे के दिन होते हैं। कुल ५५८ दिन होते हैं। इस प्रकार उग्र तपस्या करके और बीस बोलों में से कई बोलों की उत्कृष्ट आराधना करके महाबल मुनि ने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया।

तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन करने के बीस बोल ये हैं--

(१) अरिहन्त (२) सिद्ध (३) प्रवचन श्रुतज्ञान (४) गुरु-धर्मोपदेशक (५) स्थविर (६) बहुश्रुत (७) तपस्वी। इन सात की वत्स-

लता यानी बहुमान पूर्वक भक्ति करने से। (८) ज्ञान (९) दर्शन (१०) विनय (११) आवश्यक (१२) शीलव्रत इन पाँचों का निरतिचार पालन करने से। (१३) खणलव-संवेग, भावना और ध्यान से। (१४) तप (१५) त्याग (१६) वैयावच्च (१७) समाधि (१८) अपूर्व ज्ञान ग्रहण (१९) श्रुत भक्ति (२०) प्रवचन प्रभावना।

इन बीस बोलों की उत्कृष्ट आराधना करने से जीव तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन करता है। इन बीस बोलों की विस्तृत व्याख्या छठे भाग में बीसवें बोल संग्रह में दी जायगी।

अनेक वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके वे देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर वे छहों मित्र भिन्न भिन्न देश के राजाओं के यहाँ राजकुमार रूप से उत्पन्न हुए। महाबल राजा का जीव देवलोक से चव कर मिथिला नगरी के राजा कुम्भ की रानी प्रभावती के गर्भ में आया। सुख शय्या पर सोती हुई प्रभावती रानी ने निम्न लिखित चौदह महास्वप्न देखे। यथा—गज, वृषभ, सिंह, अभिषेक, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कलश, पद्म, सरोवर, सागर, विमान, रत्नराशि, निर्धूम अग्नि।

स्वप्न पाठकों से स्वप्नों के फल को सुन कर रानी अतिहर्षित हुई और गर्भ का पालन करने लगी। नौ मास पूर्ण होने पर रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्री के जन्म से माता पिता को बहुत प्रसन्नता हुई। तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान कर अनेक देवी और देवों के साथ इन्द्र वहाँ उपस्थित हुए। यथाविधि जन्म कल्याण मना कर वे वापिस अपने स्थान पर चले गये। माता पिता ने पुत्री का नाम मल्लिकुँवरी रखा। पाँच धायों द्वारा लालन पालन की जाती हुई मल्लिकुँवरी सुरक्षित बेल की तरह बढ़ने लगी।

जब मल्लिकुँवरी की अवस्था लगभग सौ वर्ष की हुई तब एक समय उन्होंने अवधिज्ञान द्वारा अपने पूर्वभव के छः मित्रों को देखा

और जाना कि वे इसी भरतक्षेत्र में अलग अलग राजाओं के यहाँ राजपुत्र रूप से उत्पन्न हुए हैं।

भविष्य में होने वाली घटना को ज्ञान द्वारा जान कर मल्लि-कुवरी ने नौकरों को बुला कर अशोक वाटिका में अनेक स्तम्भों वाला एक मोहनघर बनाने की आज्ञा दी।

मोहन घर बन जाने के बाद उसके बीच मल्लिकुवरी के आकार वाली एक सोने की प्रतिमा बनवाई। उसके मस्तक पर एक छिद्र रखा और उस पर एक कमलाकार ढक्कन लगा दिया। मल्लिकुवरी जो भोजन करती उसमें से एक ग्रास प्रतिदिन उस छिद्र में डाल कर वापिस ढक्कन लगा दिया जाता था। भोजन के सड़ने से उसमें से गाय और सर्प के मृत कलेवर से भी अत्यन्त अधिक दुर्गन्ध उठने लगी।

मल्लिकुवरी अब पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। उसके रूप लावण्य की प्रशंसा चारों तरफ फैल गई।

उस समय साकेतपुर नाम का नगर था। वहाँ प्रतिबुद्धि नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम पद्मावती था। राजा के प्रधान मन्त्री का नाम सुबुद्धि था। वह राजनीति में बड़ा चतुर था।

एक समय नाग महोत्सव मनाने के लिये राजा, रानी और मन्त्री सभी उद्यान में गये। वहाँ राजा ने एक बड़ा सिरिदामगंड अर्थात् सुन्दर मालाओं का दण्डाकार समूह देखा। उसे देख कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने मन्त्री से पूछा कि क्या तुमने कहीं पहले ऐसा सिरिदामगंड देखा है। मन्त्री ने उत्तर दिया-- राजन्! एक समय मैं मिथिला गया था। उस समय वहाँ के राजा कुम्भ की पुत्री मल्लिकुँवरी का जन्म महोत्सव मनाया जा रहा था। मैंने वहाँ एक सिरिदामगंड देखा था। पद्मावती रानी का यह सिरिदामगंड उसकी शोभा के लाखवें अंश को भी प्राप्त नहीं होता।

इसके बाद मन्त्री द्वारा की गई मल्लिकुमरी के रूप लावण्य की प्रशंसा को सुन कर प्रतिबुद्धि राजा ने एक दूत राजा कुम्भ के पास भेजा और मल्लिकुमरी की मागणी (याचना) की। दूत शीघ्र ही मिथिला के लिये रवाना हो गया।

अङ्गदेश में चम्पा नाम की नगरी थी। जहाँ के राजा का नाम चन्द्रछाय था। उस नगरी में अरणक आदि बहुत से श्रावक रहते थे। वे नौका द्वारा अपना व्यापार परदेश में करते थे। एक समय अरणक श्रावक ने दूसरे बहुत से व्यापारियों के साथ लवण समुद्र में यात्रा की। जब जहाज समुद्र के बीच में पहुँच गया तो अकाल ही में मेघ की गर्जना होने लगी और भयंकर बिजलियाँ चमकने लगीं। इसके पश्चात् हाथ में तलवार लिए एक भयंकर रूप वाला पिशाच उनके सन्मुख आया और अरणक श्रावक से कहने लगा कि हे अरणक! तुझे अपने धर्म से विचलित होना इष्ट नहीं परन्तु मैं तुझे तेरे धर्म से विचलित करूँगा। तू अपने धर्म को छोड़ दे अन्यथा मैं तेरे जहाज को आकाश में उठा कर फिर समुद्र में पटक दूँगा जिससे तू मर कर आर्त और रौद्र ध्यान करता हुआ दुर्गति को प्राप्त होगा।

पिशाच के उपरोक्त वचनों को सुन कर जहाज में बैठे हुए दूसरे लोग बहुत घबराये और इन्द्र, वैश्रमण, दुर्गा आदि देवों की अनेक प्रकार की मान्यताएं करने लगे किन्तु अरणक श्रावक किञ्चिन्मात्र भी घबराया नहीं और न विचलित ही हुआ। प्रत्युत अपने वस्त्र से भूमि का प्रमार्जन करके सागारी संथारा करके धर्म ध्यान करता हुआ शान्तचित्त से बैठ गया। इस प्रकार निश्चल बैठे हुए अरणक श्रावक को देख कर वह पिशाच अनेक प्रकार के भयोत्पादक वचन कहने लगा। अरणक को विचलित न देख पिशाच [illegible] को दो अगुलियों से उठा

और जाना कि वे इसी भरतक्षेत्र में अलग अलग राजाओं के यहाँ राजपुत्र रूप से उत्पन्न हुए हैं।

भविष्य में होने वाली घटना को ज्ञान द्वारा जान कर मल्लि-कुमरी ने नौकरों को बुला कर अशोक वाटिका में अनेक स्तम्भों वाला एक मोहनघर बनाने की आज्ञा दी।

मोहन घर बन जाने के बाद उसके बीच मल्लिकुमरी के आकार वाली एक सोने की प्रतिमा बनवाई। उसके मस्तक पर एक छिद्र रखा और उस पर एक कमलाकार ढक्कन लगा दिया। मल्लिकुमरी जो भोजन करती उसमें से एक ग्रास प्रतिदिन उस छिद्र में डाल कर वापिस ढक्कन लगा दिया जाता था। भोजन के सड़न से उसमें से गाय और सर्प के मृत कलेवर से भी अत्यन्त अधिक दुर्गन्ध उठने लगी।

मल्लिकुमरी अब पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। उसके रूप लावण्य की प्रशंसा चारों तरफ फैल गई।

उस समय साकेतपुर नाम का नगर था। वहाँ प्रतिबुद्धि नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम पद्मावती था। राजा के प्रधान मन्त्री का नाम सुबुद्धि था। वह राजनीति में बड़ा चतुर था।

एक समय नाग महोत्सव मनाने के लिये राजा, रानी और मन्त्री सभी उद्यान में गये। वहाँ राजा ने एक बड़ा सिरिदामगंड अर्थात् सुन्दर मालाओं का दण्डाकार समूह देखा। उसे देख कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने मन्त्री से पूछा कि क्या तुमने कहीं पहले ऐसा सिरिदामगंड देखा है। मन्त्री ने उत्तर दिया— राजन्! एक समय मैं मिथिला गया था। उस समय वहाँ के राजा कुम्भ की पुत्री मल्लिकुँवरी का जन्म महोत्सव मनाया जा रहा था। मैंने वहाँ एक सिरिदामगंड देखा था। पद्मावती रानी का यह सिरिदामगंड उसकी शोभा के लाखवें अंश को भी प्राप्त नहीं होता।

इसके बाद मन्त्री द्वारा की गई मल्लिकुंवरी के रूप लावण्य की प्रशंसा को सुन कर प्रतिबुद्धि राजा ने एक दूत राजा कुम्भ के पास भेजा और मल्लिकुंवरी की मागणी (याचना) की। दूत शीघ्र ही मिथिला के लिये रवाना हो गया।

अङ्गदेश में चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम चन्द्रछाय था। उस नगरी में अरणक आदि बहुत से श्रावक रहते थे। वे नौका द्वारा अपना व्यापार परदेश में करते थे। एक समय अरणक श्रावक ने दूसरे बहुत से व्यापारियों के साथ लवण समुद्र में यात्रा की। जब जहाज समुद्र के बीच में पहुँच गया तो अकाल ही में मेघ की गर्जना होने लगी और भयंकर बिजलियाँ चमकने लगीं। इसके पश्चात् हाथ में तलवार लिए एक भयंकर रूप वाला पिशाच उनके सन्मुख आया और अरणक श्रावक से कहने लगा कि हे अरणक! तुझे अपने धर्म से विचलित होना इष्ट नहीं परन्तु मैं तुझे तेरे धर्म से विचलित करूँगा। तू अपने धर्म को छोड़ दे अन्यथा मैं तेरे जहाज को आकाश में उठा कर फिर समुद्र में पटक दूँगा जिससे तू मर कर आर्त और रौद्र ध्यान करता हुआ दुर्गति को प्राप्त होगा।

पिशाच के उपरोक्त वचनों को सुन कर जहाज में बैठे हुए दूसरे लोग बहुत घबराये और इन्द्र, वैश्रमण, दुर्गा आदि देवों की अनेक प्रकार की मान्यताएं करने लगे किन्तु अरणक श्रावक किञ्चिन्मात्र भी घबराया नहीं और न विचलित ही हुआ। प्रत्युत अपने वस्त्र से भूमि का प्रमार्जन करके सागारी संथारा करके धर्म ध्यान करता हुआ शान्तचित्त से बैठ गया। इस प्रकार निश्चल बैठे हुए अरणक श्रावक को देख कर वह पिशाच अनेक प्रकार के भयोत्पादक वचन कहने लगा। अरणक को विचलित न होते देख पिशाच उस जहाज को दो अंगुलियों से उठा कर आकाश

में बहुत ऊंचा ले गया और अरणक श्रावक से फिर इसी प्रकार कहने लगा कि तू अपने धर्म को छोड़ दे। किन्तु वह अपने धर्म से किञ्चित् भी चलायमान नहीं हुआ। अरणक श्रावक को इस प्रकार अपने धर्म में दृढ़ देख कर वह पिशाच शान्त हो गया। अपना असली देवस्वरूप धारण करके वह अरणक श्रावक के सामने हाथ जोड़ कर उपस्थित हुआ और कहने लगा कि– पूज्य! आप धन्य हैं। आपका जन्म सफल है। आज देवसभा के अन्दर शक्रेन्द्र ने आपकी धार्मिक दृढ़ता की प्रशंसा की कि जीवाजीवादिक नव तत्त्व का ज्ञाता अरणक श्रावक अपने धर्म के विषय में इतना दृढ़ है कि उसको देव दानव भी निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित करने में और समकित से भ्रष्ट करने में समर्थ नहीं है। मुझे शक्रेन्द्र के वचनों पर विश्वास नहीं आया। अतः मैं आपकी धार्मिक दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए यहाँ आया था।

"देवानुप्रिय! जिस तरह शक्रेन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी वास्तव में आप वैसे ही हैं"। मैंने जो आपको कष्ट दिया उसके लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ। मेरे अपराध को आप क्षमा करें, इस प्रकार वह अपने अपराध की क्षमा याचना करके अरणक श्रावक को सेवा में कुण्डलों की जोड़ी रख कर अपने स्थान को चला गया। अपने आप को उपसर्ग रहित समझ कर अरणक श्रावक ने काउसग्ग खोला और सागारी संथारे को पार लिया। इसके बाद वे अरणक आदि सभी नौवणिक् दक्षिण दिशा में स्थित मिथिला नगरी के अन्दर आए। अरणक ने राजा कुम्भ को बहुत सा द्रव्य और एक कुण्डल जोड़ी भेंट की। राजा कुम्भ को वह कुण्डल जोड़ी बहुत पसन्द आई और उसी समय मल्लिकुँवरी को बुला कर उसे पहना दी। अरणक आदि व्यापारियों का बहुत आदर सत्कार किया और उनका राज्य महसूल माफ कर दिया।

व्यापारियों ने अपना माल बेचा और वहाँ से नया माल खरीद कर जहाज में भर लिया। समुद्र यात्रा करते हुए वे चम्पा नगरी पहुँचे। वहाँ के राजा चन्द्रछाय के पूछने पर उन व्यापारियों ने मल्लिकुँवरी के रूप लावण्य का वर्णन किया। उसे सुन कर चन्द्रछाय राजा ने अपना एक दूत कुम्भ राजा के पास भेजा कि मल्लिकुँवरी का विवाह उसके साथ कर दें।

कुणाल देश में श्रावस्ती नगरी थी। वहाँ रूपी नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम धारिणी और पुत्री का नाम सुबाहुकुमारी था। एक समय राजा ने बड़ी धूमधाम से सुबाहुकुमारी का स्नान महोत्सव मनाया। राजा ने अपने मन्त्री वर्षधर से पूछा कि इससे पहिले तुमने कहीं ऐसा स्नान महोत्सव देखा है? मन्त्री ने उत्तर दिया— मिथिला के राजा कुम्भ की पुत्री मल्लिकुवरी का स्नान महोत्सव देखा था। यह उसके लाखवें अंश को भी प्राप्त नहीं होता है।

मन्त्री द्वारा की गई मल्लिकुवरी के रूप लावण्य की प्रशसा को सुन कर राजा उसे प्राप्त करने के लिये आतुर होगया। तत्काल एक दूत को बुला कर राजा ने उसे मिथिला भेजा और मल्लिकुँवरी की मागणी (याचना) की। दूत मिथिला के लिए रवाना होगया।

एक समय मल्लिकुवरी के कानों के दिव्य कुण्डलों की सन्धि खुल गई। राजा कुम्भ ने शहर के सारे सुनारों को बुलाया और उन टूटे हुए कुण्डलों की सन्धि जोड़ने के लिये कहा। सुनारों ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु वे कुण्डलों की सन्धि नहीं जोड़ सके। राजा के पास आकर वे कहने लगे— राजन्! यदि आप आज्ञा दें तो हम नये कुण्डल बना सकते हैं किन्तु इन टूटे हुए कु[illegible] सन्धि जोड़ने में [illegible] [illegible]राजा की बात सुन कर [illegible] हो गया। उसने [illegible] [illegible]की राज्य से निकल जाने

दे दी। ये सब सुनार मिथिला से निकल कर वाराणसी नगरी में आये। वहाँ के राजा शंख के पास जाकर वाराणसी में रहने की आज्ञा मांगी। राजा ने उनसे देशनिकाला देने का कारण पूछा। सुनारों ने सारा वृत्तान्त कहा और मल्लिकुमारी के रूप लावण्य की प्रशंसा की। उसे सुन कर मल्लिकुमारी के साथ विवाह करने की इच्छा से राजा शंख ने एक दूत मिथिला भेजा।

मिथिला के राजा कुम्भ के पुत्र का नाम मल्लदिन्न था। वह युवराज था। एक समय शहर के सब चित्रकारों को बुला कर मल्लदिन्न कुमार ने अपने सभाभवन को चित्रित करने की आज्ञा दी। चित्रकारों ने राजकुमार की आज्ञा स्वीकार कर अपना काम शुरु कर दिया।

उन सब चित्रकारों में एक चित्रकार को ऐसी लब्धि थी कि किसी भी पदार्थ का एक अवयव देख कर सारे का हूबहू चित्र बना सकता था। एक समय महल में बैठी हुई मल्लिकुमारी के पैर का अंगूठा चित्रकार की नजरों में पड़ गया। उसने लब्धि के प्रभाव से मल्लिकुमारी का हूबहू चित्र सभाभवन में चित्रित कर दिया। जब सभाभवन पूरा चित्रित होगया तो राजकुमार उसे देखने के लिये आया। विविध प्रकार के चित्रों को देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। आगे बढ़ने पर उसने अपनी बड़ी बहिन मल्लिकुमारी का चित्र देखा। उसे देख कर वह उस चित्रकार पर कुपित होगया। उसने उस चित्रकार को अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। वह चित्रकार मिथिला से निकल कर हस्तिनापुर में आया। वहाँ के राजा अदीनशत्रु के पास जाकर उसने वहाँ रहने की आज्ञा माँगी। राजा के पूछने पर चित्रकार ने अपना सारा वृत्तान्त कहा और मल्लिकुमारी का चित्र उसे बताया। चित्र को देख कर राजा उस पर मोहित होगया। मल्लिकुमारी के साथ विवाह करने की इच्छा से राजा ने अपना एक दूत मिथिला को भेजा।

एक समय चोखा नाम की परिव्राजिका मिथिला नगरी में आई। मल्लिकुंवरी के पास आकर शुचि धर्म का उपदेश देने लगी। उसने बतलाया कि हमारे धर्मानुसार अपवित्र वस्तु की शुद्धि जल और मिट्टी द्वारा होती है। मल्लिकुंवरी ने कहा—परिव्राजिके! रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से धोने पर क्या उसकी शुद्धि हो सकती है? परिव्राजिका ने कहा—नहीं। मल्लिकुंवरी ने कहा—इसी प्रकार हिंसा से हिंसा की (पाप स्थानों की) शुद्धि नहीं हो सकती। मल्लिकुंवरी का युक्ति पूर्ण वचन सुन कर चोखा परिव्राजका निरुत्तर हो गई। मल्लिकुंवरी की दासियों ने उसका उपहास किया। इससे क्रोधित होकर चोखा परिव्राजिका वहाँ से निकल गई। वह कम्पिलपुर के राजा जितशत्रु के अन्तःपुर में गई। राजा ने उसका आदर सत्कार किया। इसके पश्चात् राजा ने उससे पूछा परिव्राजिके! तुम बहुत जगह घूमती हो। मेरे जैसा अन्तःपुर तुम ने कहीं देखा है? परिव्राजिका ने कहा—राजन्! आप कूपमण्डूक प्रतीत होते हैं। मैंने मिथिला के राजा कुम्भ की पुत्री मल्लिकुंवरी को देखा है। वह देवकन्या के समान सुन्दर है। आपका सारा अन्तःपुर उसके पैर के अंगूठे की शोभा को भी प्राप्त नहीं हो सकता।

मल्लिकुंवरी के रूप लावण्य की प्रशंसा सुन कर राजा जितशत्रु ने अपना एक दूत राजा कुम्भ के पास मिथिला भेजा और मल्लिकुँवरी की मागणी (याचना) की।

छहों राजाओं के दूत एक साथ मिथिला में पहुँचे और अपने अपने राजा का सन्देश कुम्भ राजा को कह सुनाया। एक कन्या के लिए छः राजाओं की मागणी देख कर कुम्भ राजा को क्रोध आगया। दूतों का अपमान करके उन्हें अपने नगर से बाहर निकाल दिया। अपमानित होकर दूत वापिस चले गये। उन्होंने जाकर सारा वृत्तान्त अपने अपने राजा से कहा। इससे वे छहों राजा

कुपित हुए और अपनी अपनी सेना सजा कर राजा कुम्भ के ऊपर चढ़ाई कर दी। इस वृत्तान्त को सुन कर राजा कुम्भ घबराया। मल्लिकुँवरी ने अपने पिता को आश्वासन दिया और कहा कि आप घबराइये नहीं। मैं सब को समझा दूँगी। आप सब राजाओं के पास पृथक् पृथक् दूत भेज दीजिए कि शाम को तुम मोहन घर में चले आओ। मैं तुम्हें मल्लिकुँवरी दूँगा। राजा कुम्भ ने ऐसा ही किया। पृथक् पृथक् द्वार से वे छहों राजा शाम को मोहन घर में आगये। मल्लिकुँवरी ने पहले से मोहन घर में अपने आकारवाली सोने की पुतली बना रखी थी जिसमें ऊपर के छिद्र से प्रतिदिन भोजन का एक एक ग्रास डाला था। उस सुवर्ण की पुतली को देख कर वे छहों राजा उसे साक्षात् मल्लिकुँवरी समझ कर उस पर मोहित होगये। इसी समय मल्लिकुँवरी ने उस पुतली के ढक्कन को उघाड़ दिया जिससे उसमें डाले हुए अन्न की अत्यन्त दुर्गन्ध बाहर निकली। उस दुर्गन्ध को न सह सकने के कारण वे छहों राजा पराङ्मुख होकर बैठ गये। इस अवसर को उपयुक्त समझ कर मल्लिकुँवरी ने उनको शरीर की अशुचिता बतलाते हुए धर्मोपदेश दिया और अपने पूर्वभव का वृत्तान्त कहा जिसे सुन कर उन छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। छहों राजाओं ने अपने अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक कर भगवान् मल्लिनाथ के साथ प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। वर्षीदान देने के पश्चात् भगवान् मल्लिनाथ ने पौष शुक्ला एकादशी को प्रातःकाल दीक्षा ली और दूसरे पहर में उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

भगवान् मल्लिनाथ के २८ गण थे और २८ ही गणधर थे। चालीस हजार साधु, पचपन हजार साध्वियाँ, एक लाख चौरासी हजार श्रावक, तीन लाख पैंसठ हजार श्राविकाएं थीं। छः सौ चौदह पूर्वधारी साधु, दो हजार अवधिज्ञानी, ३२०० केवलज्ञानी, ३५००

वैक्रियक लब्धिधारी, ८०० मनःपर्ययज्ञानी, १४०० वादी, २००० अनुत्तर विमानवासी हुए।

भगवान् मल्लिनाथ को केवलज्ञान होने के दो वर्ष बाद उनके शासन में से जीव मोक्ष जाने लगे और उनके निर्वाण के पश्चात् बीस पाट तक जीव मोक्ष में जाते रहे। भगवान् मल्लिनाथ का शरीर पच्चीस धनुष ऊंचा था, शरीर का वर्ण प्रियगु समान नीला था।

केवलज्ञान होने पर वे धर्मोपदेश करते हुए और अनेक भव्य-प्राणियों का उद्धार करते हुए विचरते रहे। भगवान् मल्लिनाथ सौ वर्ष तक गृहस्थावास (छद्मस्थावस्था) में रहे। सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष श्रमण पर्याय और केवल पर्याय का पालन कर ग्रीष्म ऋतु में समेदशिखर पर्वत पर पधारे और पादपोपगमन संथारा किया। उनके साथ पाँच सौ साधुओं और पाँच सौ साध्वियों ने भी संथारा किया। चैत्र शुक्ला चौथ के दिन अर्ध-रात्रि के समय भरणी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर वेदनीय, आयुष्य नाम, गोत्र इन चार अघाती कर्मों का नाश कर भगवान् मल्लिनाथ मोक्ष पधार गये।

(९) जिनपाल और जिनरक्ष की कथा

नवां 'माकंदी ज्ञात' अध्ययन—काम भोगों में लिप्त रहने वाले पुरुष को दुःख की प्राप्ति होती है और काम भोगों से विरक्त पुरुष को सुख की प्राप्ति होती है। इस विषय की पुष्टि के लिए इस अध्ययन में जिनपाल और जिनरक्ष का दृष्टान्त दिया गया है।

चम्पा नगरी में माकंदी नाम का सार्थवाह रहता था। उसके जिनपाल और जिनरक्ष नाम के दो पुत्र थे। उन दोनों भाइयों ने ग्यारह वक्त लवण समुद्र में यात्रा कर व्यापार द्वारा बहुत सा द्रव्य उपार्जन किया था। माता पिता के [illegible] पर भी वे दोनों

लवण समुद्र में ग्यारहवीं बार यात्रा करने के लिए रवाना हुए। जब जहाज समुद्र के बीच में पहुँचा तो तूफान से नष्ट हो गया। जहाज का टूटा हुआ एक पाटिया उन दोनों भाइयों के हाथ लग गया। जिस पर बैठ कर तैरते हुए वे दोनों रत्नद्वीप में जा पहुँचे। उस द्वीप की स्वामिनी रयणा देवी ने उन्हें देखा। वह उनसे कहने लगी कि तुम दोनों मेरे साथ कामभोग भोगते हुए यहाँ रहो अन्यथा मैं तुम्हें मार दूँगी। इस प्रकार उस देवी के भयप्रद वचनों को सुन कर उन्होंने उसकी बात स्वीकार कर ली और उसके साथ कामभोग भोगते हुए रहने लगे।

एक समय लवण समुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव ने रयणा देवी को लवण समुद्र की इक्कीस बार परिक्रमा करके तृण, पत्ते, काष्ठ, कचरा, अशुचि आदि को साफ करने की आज्ञा दी। तब उस देवी ने उन दोनों भाइयों को कहा–देवानुप्रियो! मैं वापिस लौट कर आऊँ तब तक तुम यहीं पर आनन्द पूर्वक रहो। यदि इच्छा हो तो पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा के वनखण्ड में जाना किन्तु दक्षिण दिशा के वन खण्ड (बगीचे) में मत जाना। वहाँ पर एक भयंकर विषधारी सर्प रहता है वह तुम्हारा विनाश कर डालेगा। ऐसा कह कर देवी चली गई। वे दोनों भाई पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा के वनखण्ड में जाने के बाद दक्षिण दिशा के वनखण्ड में भी गए। उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही थी। उसके अन्दर जाकर देखा कि सैकड़ों मनुष्यों की हड्डियों का ढेर लगा हुआ है और एक पुरुष शूली पर लटक रहा है। यह हाल देख कर वे दोनों भाई बहुत घबराये और शूली पर लटकते हुए उस पुरुष से उसका वृत्तान्त पूछा। उसने कहा कि मैं भी तुम्हारी तरह जहाज के टूट जाने से यहाँ आ पहुँचा था। मैं काकन्दी नगरी का रहने वाला घोड़ों का व्यापारी हूँ। पहले यह देवी मेरे साथ कामभोग भोगती रही।

एक समय एक छोटे से अपराध के हो जाने पर कुपित होकर इस ने मुझे यह दण्ड दिया है। न मालूम यह देवी तुम्हें किस समय और किस ढंग से मार देगी। पहले भी कई मनुष्यों को मार कर यह हड्डियों का ढेर कर रखा है।

शूली पर लटकते हुए पुरुष के उपरोक्त वचनों को सुन कर दोनों भाई बहुत भयभीत हुए और वहाँ से भाग निकलने का उपाय पूछने लगे। तब वह पुरुष कहने लगा कि पूर्व दिशा के वन-खण्ड में शैलक नाम का एक यक्ष रहता है। उसकी पूजा करने से प्रसन्न होकर वह तुम्हें इस देवी के फन्दे से छुड़ा देगा। यह सुन कर वे दोनों भाई यक्ष के पास जाकर उसकी स्तुति करने लगे और उस देवी के फन्द से छुड़ाने की प्रार्थना करने लगे। उन पर प्रसन्न होकर यक्ष कहने लगा कि मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छित स्थान पर पहुँचा दूँगा। किन्तु मार्ग में वह देवी आकर अनेक प्रकार के हावभाव करके अनुकूल प्रतिकूल वचन कहती हुई परिषह उपसर्ग देगी। यदि तुम उसके कहने में आकर उसमें आसक्त हो जाओगे तो मैं तुम्हें मार्ग में ही अपनी पीठ पर से फेंक दूँगा। यक्ष की इस शर्त को उन दोनों भाइयों ने स्वीकार किया। यक्ष ने अश्व का रूप बनाया और दोनों भाइयों को अपनी पीठ पर बैठा कर आकाश मार्ग में चला। इतने में वह देवी आ पहुँची। उनको वहाँ न देख कर अवधिज्ञान में शैलक यक्ष की पीठ पर जाते हुए देखा। वह शीघ्र वहाँ आई और अनेक प्रकार से हावभाव पूर्वक अनुकूल प्रतिकूल वचन कहती हुई करुण विलाप करने लगी। जिनपाल ने उसके वचनों पर कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु जिनरक्ष उसके वचनों में फँस गया। वह उस पर मोहित होकर प्रेम के साथ रयणा देवी को देखने लगा। जिसमें उस यक्ष ने अपनी पीठ पर से फेंक दिया। नीचे गिरते हुए जिनरक्ष को उस देवी ने शूली में पिरो दिया

और नकुल रूप लेकर उसे प्राण रहित करके समुद्र में डाल दिया। जिनपाल देवी के वचनों में नहीं फंसा इसलिए यक्ष ने उसको आनन्द पूर्वक चम्पा नगरी में पहुँचा दिया। वहाँ पहुँच कर जिन पाल अपने माता पिता से मिला। कई वर्षों तक सांसारिक सुख भोग कर प्रव्रज्या अङ्गीकार की। कई वर्षों तक संयम का पालन कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ का आयुष्य पूरा कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध यावत मुक्त होगा।

अन्त में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने मुनियों को सम्बोधित कर फरमाया कि– श्रमणो ! जो प्राणी छोड़े हुए काम भोगों की फिर से इच्छा नहीं करते वे जिनपाल की तरह शीघ्र ही संसार रूपी समुद्र को पार कर सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं और जो प्राणी रयणा देवी सरीखी अविरति में फंस कर काम भोगों में आसक्त हो जाते हैं वे जिनरक्ष की तरह संसार रूपी समुद्र में पड़ कर अनन्त काल तक जन्म मरण के दुखों का अनुभव करते हुए परिभ्रमण करते हैं। ऐसा समझ कर मुमुक्षु आत्माओं को काम भोगों से निवृत्ति करनी चाहिए।

(१०) चन्द्रमा का दृष्टान्त

दसवां 'चन्द्र नात' अध्ययन–प्रमादी जीवों के गुणों की हानि और अप्रमादी जीवों के गुणों की वृद्धि होती है। यह बताने के लिए गौतम स्वामी द्वारा किये गये प्रश्न के उत्तर में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चन्द्रमा का दृष्टान्त दिया। यथा–

पूर्णिमा के चन्द्रमा की अपेक्षा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा हीन होता है। उसकी अपेक्षा द्वितीया का चन्द्रमा और हीन होता है। इस प्रकार क्रमशः हीनता को प्राप्त होता हुआ चन्द्रमा अमावस्या को सब प्रकार से हीन होजाता है अर्थात् अमावस्या का चन्द्रमा

सर्वथा प्रकाश शून्य हो जाता है।

इसी प्रकार जो साधु क्षमा मार्दव आदि तथा ब्रह्मचर्य के गुणों में शिथिलता को प्राप्त होता जाता है वह अन्त में ब्रह्मचर्य आदि के गुणों से सर्वथा भ्रष्ट होजाता है।

जिस प्रकार अमावस्या के चन्द्रमा की अपेक्षा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा प्रकाश में कुछ अधिक होता है। प्रतिपदा की अपेक्षा द्वितीया का चन्द्रमा और विशेष प्रकाशमान होता है। इस तरह क्रमशः बढ़ते बढ़ते पूर्णिमा को अखण्ड और पूर्ण प्रकाशमान बन जाता है।

इसी प्रकार जो साधु अप्रमादी बन कर अपने क्षमा आदिक यावत् ब्रह्मचर्य्य के गुणों को बढ़ाता है वह अन्त में जाकर सम्पूर्ण आत्मिक गुणों से युक्त हो जाता है और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

(११) दावद्रव वृक्ष का दृष्टान्त

ग्यारहवां 'दावद्रव ज्ञात' अध्ययन— धर्म सम्बन्धी मार्ग की आराधना करने वाले को सुख की प्राप्ति और विराधना करने वाले को दुःख की प्राप्ति होती है। इसलिए इस अध्ययन में दावद्रव वृक्ष का दृष्टान्त दिया गया है।

समुद्र के किनारे 'दावद्रव' नाम के एक तरह के वृक्ष होते हैं। उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो समुद्र की हवा लगने से मुरझा जाते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो द्वीप की हवा लगने से मुरझा कर सूख जाते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो द्वीप और समुद्र दोनों की हवा से नहीं सूखते और कुछ ऐसे होते हैं जो दोनों की हवा न सह सकने के कारण सूख जाते हैं। इस दृष्टान्त के अनुसार साधुओं की चतुर्भङ्गी बतलाई गई है। यथा—

कुछ होते हैं जो साधु, साध्वी,

कर स्वतीर्थिकों के कठोर वचनों को सहन कर लेते हैं परन्तु अन्य तीर्थिकों के वचनों को सहन नहीं करते। ऐसे साधु देशविराधक कहलाते हैं। जो साधु अन्य तीर्थिकों के तथा गृहस्थों के कहे हुए कठोर वचनों का सहन करते हैं किन्तु स्वतीर्थिकों के कठोर वचनों को सहन नहीं करते वे देश आराधक कहलाते हैं। जो साधु स्व-तीर्थिक और अन्य तीर्थिक किसी के भी कठोर वचनों का सहन नहीं करते वे सर्वविराधक कहे जाते हैं। जो साधु स्वतीर्थिक और अन्य तीर्थिक दोनों के कठोर वचनों को समभाव से सहन करते हैं वे सर्व आराधक कहे जाते हैं।

उपरोक्त दृष्टान्त द्वारा यह बतलाया गया है कि जीवों को आराधक बनना चाहिए, विराधक नहीं। आराधक बनने से ही जीव का कल्याण होता है।

(१२) पुद्गलों के शुभाशुभ परिणाम

बारहवाँ 'उदक ज्ञात' अध्ययन—स्वभाव से मलिन चित्त वाले भी भव्य प्राणी सद्गुरु की सेवा से चारित्र के आराधक बन जाते हैं। पुद्गल किस प्रकार शुभाशुभ रूप में परिवर्तित हो जाते हैं इस बात को बतलाने के लिए इस अध्ययन में जल का दृष्टान्त दिया गया है।

चम्पा नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसके सुबुद्धि नामक मन्त्री था। वह जीवाजीवादि नव तत्त्वों का जानकार श्रावक था। एक समय भोजन करने के पश्चात् राजा ने उस भोजन के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि की बहुत तारीफ की। राज परिवार ने भी राजा के कथन का अनुमोदन किया किन्तु सुबुद्धि मन्त्री उस समय मौन रहा। तब राजा ने उससे इसका कारण पूछा तो मन्त्री ने जवाब दिया कि इसमें तारीफ की क्या बात है? प्रयोग

विशेष में शुभ पुद्गल अशुभ और अशुभ पुद्गल शुभ रूप से परिणत हो सकते हैं। राजा ने मन्त्री के इन वचनों को सत्य नहीं माना।

एक समय सुबुद्धि मन्त्री के साथ राजा बाहर घूमने गया। नगर के बाहर एक खाई के अति दुर्गन्धित जल को देख कर राजा ने उस जल की निन्दा की। दूसरे लोगों ने भी राजा के कथन का समर्थन किया। मन्त्री को मौन देख कर राजा ने इसका कारण पूछा। मन्त्री ने वही पूर्वोक्त जवाब दिया। राजा ने मन्त्री के कथन को सत्य नहीं माना। अपने वचन को सत्य सिद्ध करने के लिए और राजा को तत्त्व का ज्ञान कराने के लिए मन्त्री ने उसी खाई से जल मंगाया और एक अच्छे बर्तन में डाला। फिर अनेक प्रयोग करके उस जल को शुद्ध और अति सुगन्धित बनाया। जलरक्षक के साथ उस जल को राजा के पास भेजा। उस जल को पीकर राजा बहुत खुश हुआ और जलरक्षक से पूछा कि यह जल कहाँ से आया? उसने उत्तर दिया कि सुबुद्धि मन्त्री ने मुझे यह जल दिया है। तब राजा ने मन्त्री से पूछा। मन्त्री ने जवाब दिया कि यह जल उसी खाई का है। प्रयोग करके मैंने इसको इतना श्रेष्ठ और सुगन्धित बनाया है। राजा को मन्त्री के वचनों पर विश्वास आगया। उसने मन्त्री से धर्म का तत्त्व पूछा। मन्त्री ने राजा को धर्म का तत्त्व बड़ी खूबी से समझाया। कुछ समय पश्चात् राजा और मन्त्री दोनों को संसार से विरक्ति हो गई और दोनों ने प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ा और बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुए।

जल के दृष्टान्त का अभिप्राय यह है कि खाई के पानी की तरह पापी जीव भी सद्गुरु की संगति करने से अपना आत्म-कल्याण करने में समर्थ हो सकते हैं।

(१३) नन्द मणियार की कथा

तेरहवाँ "दर्दुर ज्ञात" अध्य -सद्गुरु के अभाव में तप, नियम, व्रत, पच्चक्खाण आदि गुणों की हानि होती है। इस बात को बतलाने के लिए दर्दुर (मेंढक) का दृष्टान्त दिया गया है।

एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् महावीर राजगृह नगर म पधारे। उस समय दर्दुर नाम का देव सूर्याभ देव के समान नाट्यविधि दिखला कर और भगवान् को वन्दना नमस्कार करके वापिस अपने स्थान को चला गया। उसकी ऋद्धि के बारे में गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछा। तब भगवान् न उसका पूर्वभव फरमाया–

राजगृह नगर में नन्द नाम का मणियार रहता था। उपदेश सुन कर वह श्रावक बन गया। श्रावक बनने के बाद बहुत समय तक साधुओं का समागम नहीं होने से तथा मिथ्यात्वियों का परिचय होते रहने से वह मिथ्यात्वी बन गया। एक समय ग्रीष्म ऋतु में तेला करके वह पौषधव्रत कर रहा था। उस समय तृषा का परिषह उत्पन्न हुआ जिससे उसकी यह भावना होगई कि जो लोग कुआ, बावड़ी आदि खुदवाते हैं और जहाँ अनेक प्यासे आदमी पानी पीकर अपनी प्यास बुझाते हैं वे लोग धन्य हैं। अतः मुझे भी ऐसा ही करना श्रेष्ठ है। प्रातःकाल पारणा करने के बाद राजा की आज्ञा लेकर नगर के बाहर एक विशाल बावड़ी खुदवाई और बाग, बगीचे, चित्रशाला, भोजनशाला, वैद्यशाला अलङ्कार सभा आदि बनवाईं। उनका उपयोग नगर के सब लोग करने लगे और नन्द मणियार की प्रशंसा करने लगे। अपनी प्रशंसा सुन कर वह अत्यन्त प्रसन्न होने लगा। उसका मन दिन रात बावड़ी में रहने लगा। वह उसी में आसक्त होगया। एक समय नन्द मणियार के शरीर में श्वास, खाँसी, कोढ़ आदि सोलह

रोग उत्पन्न हुए। चिकित्सा शास्त्र में प्रवीण वैद्यों ने अनेक तरह से चिकित्सा की किन्तु उनमें से एक भी रोग शान्त नहीं हुआ। अन्त में आर्त्त ध्यान ध्याते हुए उसने तिर्यञ्च गति का आयु बांधा तथा मर कर मूर्च्छा के कारण उसी बावडी में मेंढक रूप में उत्पन्न हुआ। उस बावड़ी के जल का उपयोग करने वाले लोगों के मुख से नन्द मणियार की प्रशंसा सुन कर उस मेंढक को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपने पूर्वभव के कार्य का स्मरण किया। मिथ्यात्व का पश्चात्ताप करके मेंढक के भव में भी उसने श्रावक व्रत अङ्गीकार किये और धर्म ध्यान की भावना भाते हुए रहने लगा। एक समय मेरा (भगवान् महावीर स्वामी का) आगमन राजगृह में हुआ, उस समय पानी भरने के लिए बावडी पर गई हुई स्त्रियों के मुख से इस बात को सुन कर वह मेंढक मुझे वन्दना करने के लिए बाहर निकला। रास्ते में मुझे वन्दना करने के लिए आते हुए श्रेणिक राजा के घोड़े के पैर नीचे दब कर वह मेंढक घायल हो गया। उसी समय रास्ते के एक तरफ जाकर उसने वहीं से मुझे वन्दना नमस्कार कर संलेखना संथारा किया। शुभ ध्यान धरता हुआ वहाँ से मर कर सौधर्म देवलोक में दर्दुरावतंसक विमान में दर्दुर नाम का देव हुआ है। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और प्रव्रज्या अङ्गीकार कर मोक्ष में जायगा।

इस दृष्टान्त का अभिप्राय यह है कि समकित आदि गुणों को प्राप्त कर लेने पर भी यदि प्राणियों को श्रेष्ठ साधुओं की संगति न मिले तो नन्द मणियार की तरह गुणों की हानि हो जाती है। अतः भव्य प्राणियों को साधु समागम का लाभ सदा लेते रहना चाहिए।

(१४) तेतली पुत्र की कथा

चौदहवां 'तेतली ज्ञात' अध्ययन-धर्म की अनुकूल सामग्री मिलने से ही धर्म की प्राप्ति होती है। इस बात को बतलाने के लिए इस अध्ययन में तेतली पुत्र नाम के मन्त्री का दृष्टान्त दिया गया है।

तेतलीपुर नगर में कनकरथ राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। तेतली पुत्र नाम का मन्त्री था। वह राजनीति में अति निपुण था। उसकी स्त्री का नाम पोट्टिला था। कनकरथ राजा राज्य में अत्यन्त आसक्त एवं गृद्ध होने के कारण अपने उत्पन्न होने वाले सब पुत्रों के अङ्गों को विकृत करके उनको राज्य पद के अयोग्य बना देता था। इस बात से रानी अति दुःखित थी। एक समय उसने अपने मन्त्री से सलाह की और उत्पन्न हुए एक पुत्र को गुप्त रूप से तत्काल मन्त्री के घर पहुँचा दिया। मन्त्री के घर वह आनन्द पूर्वक बढ़ने लगा। उसका नाम कनकध्वज रखा गया। वह कलाओं में निपुण होकर यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ।

तेतली पुत्र मन्त्री अपनी पोट्टिला भार्या के साथ आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करता था किन्तु किसी कारण से कुछ समय के पश्चात् वह पोट्टिला तेतलीपुत्र को अप्रिय और अनिष्टकारी होगई। वह उसका नाम सुनने से भी घृणा करने लगा। यह देख पोट्टिला अति दुःखित होकर आर्त्तध्यान करने लगी। तब तेतलीपुत्र ने उस से कहा कि तू आर्त्तध्यान मत कर। मेरी दानशाला में चली जा। वहाँ श्रमण माहणों को विपुल अशन पान आदि देती हुई आनन्द पूर्वक रह। पोट्टिला वैसा ही करने लगी।

एक समय सुव्रता नाम की आर्या अपनी शिष्य मण्डली सहित वहाँ आई। भिक्षा के लिए आती हुई दो आर्याओं को देख पोट्टिला ने अपने आसन से उठ कर उन्हें वन्दना नमस्कार किया और

आदर पूर्वक आहार पानी बहराया। फिर पोट्टिला उनसे पूछने लगी कि कृपा कर मुझे कोई ऐसी दवा, चूर्णयोग या मन्त्र वगैरह बताओ जिससे मैं फिर तेतलीपुत्र को प्रिय एवं इष्ट बन जाऊँ? पोट्टिला के इन वचनों को सुन कर उन आर्याओं ने दोनों हाथों से अपने दोनों कान बन्द कर लिए और कहने लगी कि ऐसी दवा या मन्त्र तन्त्र बताना तो दूर रहा हमें ऐसे वचनों को सुनना भी योग्य नहीं, क्योंकि हम तो पूर्ण ब्रह्मचर्य को पालने वाली आर्याएं हैं। हम तुझे केवली प्ररूपित धर्म कह सकती हैं।

उन आर्याओं के पास से केवली प्ररूपित धर्म को सुन कर पोट्टिला ने श्राविका के व्रत अङ्गीकार किये और धर्मकार्य में प्रवृत्त हुई। कुछ समय पश्चात् पोट्टिला ने सुव्रता आर्या के पास दीक्षा लेने के लिए तेतलीपुत्र से आज्ञा मांगी। तेतलीपुत्र ने कहा—'चारित्र पालन करके जब तुम स्वर्ग में जाओ तब वहाँ से आकर मुझे केवली प्ररूपित धर्म का उपदेश देकर धर्म मार्ग में प्रवृत्त करो तो मैं तुम्हें आज्ञा दे सकता हूँ।' पोट्टिला ने इस बात को स्वीकार किया और तेतलीपुत्र की आज्ञा लेकर सुव्रता आर्या के पास दीक्षा ले ली। बहुत वर्षों तक दीक्षा पाल कर काल करके देवलोक में उत्पन्न हुई।

इधर राजा कनकरथ की मृत्यु होगई तब गुप्त रखे हुए कनकध्वज कुमार को राजगद्दी पर बिठाया। राजा कनकध्वज अपनी माता पद्मावती रानी के कहने से तेतलीपुत्र मन्त्री का बहुत आदर सत्कार करने लगा तथा वेतन आदि में वृद्धि कर दी। इससे तेतलीपुत्र मन्त्री कामभोगों में अधिक गृद्ध एवं आसक्त होगया। पोट्टिल देव ने तेतलीपुत्र को धर्म का बोध दिया किन्तु उसे धर्म की ओर रुचि न हुई। तब पोट्टिल देव ने देवशक्ति से राजा
मन फेर दि... यह तेतलीपुत्र का किसी प्रकार
नहीं करने ... विमुख होगया। तेतली

भीत हुआ और आत्मघात करने की इच्छा करने लगा। तब पोट्टिल देव ने उसे प्रतिबोध दिया। शुभ अध्यवसाय से तेतलीपुत्र को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया और अपने पूर्वभव में ली हुई दीक्षा आदि के वृत्तान्त को जान कर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की। कुछ समय पश्चात् उनको केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होगए। देवों ने दुन्दुभि बजा कर केवलज्ञान महोत्सव किया। कनकध्वज राजा भी वन्दना नमस्कार करने गया। तेतलीपुत्र केवली ने धर्म कथा कही। धर्मकथा सुन कर राजा कनकध्वज ने श्रावक व्रत अङ्गीकार किये। बहुत वर्षों तक केवली पर्याय का पालन कर तेतलीपुत्र मोक्ष में पधार गये।

(१५) नन्दीफल का दृष्टान्त

पन्द्रहवां 'नंदीफल ज्ञात' अध्ययन—वीतराग देव के उपदेश से विषय का त्याग और सत्य अर्थ की प्राप्ति होती है। उसके बिना नहीं हो सकती। यह बतलाने के लिए इस अध्ययन में नन्दीफल का दृष्टान्त दिया गया है।

चम्पा नगरी में धन्ना सार्थवाह रहता था। एक समय वह अहिच्छत्रा नाम की नगरी में व्यापार करने के लिए जाने लगा। उसने शहर में घोषणा करवाई कि जो कोई व्यापार के लिए मेरे साथ चलना चाहें व चलें जिनके पास वस्त्र, पात्र, भाडा आदि नहीं है उनको मैं सब चीजें मैं दूँगा और अन्य सारी सुविधायें मैं दूँगा। इस घोषणा को सुन कर बहुत से लोग धन्ना सार्थवाह के साथ जाने को तय्यार हुए। कुछ दूर जाने पर एक अटवी पड़ी। धन्ना सार्थवाह सब लोगों को सम्बोधित कर कहने लगा कि इस अटवी में फल फूल और पत्रों से युक्त बहुत से नन्दीवृक्ष हैं। उनके फल देखने में बड़े सुन्दर और मनोहर हैं, खाने में तत्काल

स्वादिष्ट भी लगते हैं किन्तु उनका परिणाम दुःखदायी होता है और अकाल में जीवन से हाथ धोना पड़ता है। इसलिए तुम सब लोग नन्दी वृक्ष के फलों को न खाना और यहाँ तक कि उनकी छाया में भी मत बैठना। दूसरे वृक्षों के फल दिखने में तो सुन्दर नहीं हैं किन्तु उनका परिणाम सुन्दर है। उनका स्वेच्छानुसार उपभोग कर सकते हो। ऐसा कह कर उन सब लोगों के साथ धन्ना सार्थवाह ने उस अटवी में प्रवेश किया। कितनेक लोगों ने धन्ना सार्थवाह के कथनानुसार नन्दी वृक्षों के फलों को नहीं खाया और उनकी छाया में भी दूर रहे। इसलिए तत्काल तो वे सुखी नहीं हुए किन्तु अन्त में बहुत सुखी हुए। कितनेक लोगों ने धन्ना सार्थवाह के वचनों पर विश्वास न करके नन्दी वृक्षों के सुन्दर फलों को खाया और उनकी छाया में बैठ कर आनन्द उठाया। इससे तत्काल तो उन्हें सुख प्राप्त हुआ किन्तु पीछे उनका शरीर भयकर विष से व्याप्त होगया और अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हुए। इसी तरह जो पुरुष नन्दी फलों के समान पाँच इन्द्रियों के विषयों का त्याग करेंगे उनको मोक्ष सुख की प्राप्ति होगी। जो लोग नन्दी वृक्षों के समान इन्द्रियों के विषयसुख में आसक्त होवेंगे। वे अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए संसार में परिभ्रमण करेंगे।

इसके पश्चात् वह धन्ना सार्थवाह अहिच्छत्रा नगरी में गया। अपना माल बेच कर बहुत लाभ उठाया और वहाँ से वापिस माल भर कर चम्पा नगरी में आगया। बहुत वर्षों तक संसार के सुख भोगने के पश्चात् धर्मघोष मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। प्रव्रज्या का पालन कर देवलोक में गया और वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर पद प्राप्त करेगा।

(१६) श्रीकृष्ण का अपरकंका गमन

सोलहवां 'अपरकङ्कानात' अध्ययन–विषय सुख कितने दुःख दायी होते हैं, इसका वर्णन इस अध्ययन में किया गया है। विषय सुख को न भोगते हुए केवल उनकी इच्छा रखने मात्र से अनर्थ की प्राप्ति होती है। इसके लिए अपरकंका के राजा पद्मोत्तर का दृष्टान्त दिया गया है। इसमें द्रौपदी की कथा बड़े विस्तार के साथ दी गई है।

द्रौपदी का जीव पूर्वभव में चम्पा नगरी में नागश्री ब्राह्मणी के रूप में था। एक बार उसने धर्मरुचि मुनि को मासखमण के पारणे के दिन कड़वे तुम्बे का शाक बहराया। उस शाक को लेकर धर्मरुचि अनगार अपने गुरु धर्मघोष मुनि के पास आये और आहार दिखलाया। उस शाक को चख कर गुरु ने कहा कि यह तो कड़वे तुम्बे का शाक है। एकान्त में जाकर इसको परठ दो। गुरु की आज्ञा लेकर धर्मरुचि एकान्त स्थान में आये। वहाँ आकर जमीन पर एक बूंद डाली। शाक में घृतादि पदार्थ अच्छे डाले हुए थे इसलिए उस की सुगन्ध से बहुत सी कीड़ियाँ उस बूंद पर आई और उसके जहर से मर गई। मुनि ने सोचा एक बूँद से इतनी कीड़ियाँ मर गई तो न जाने इस सारे शाक से कितने जीवों का नाश होगा? इस प्रकार कीड़ियों पर अनुकम्पा करके उस सारे शाक को धर्मरुचि अनगार स्वयं पी गये। इससे शरीर में प्रबल पीड़ा उत्पन्न हुई। उसी समय मुनि ने संथारा कर लिया। समाधि पूर्वक मरण प्राप्त कर वे सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और प्रव्रज्या ग्रहण कर मोक्षपद प्राप्त करेंगे।

धर्मरुचि मुनि को कड़वा तुम्बा बहराने आदि का सारा वृत्तान्त

नागश्री के पति को मालूम हुआ। इससे वह अतिकुपित हुआ। तर्जना और ताडना पूर्वक उसने नागश्री को घर से बाहर निकाल दिया, जिससे लोगों में भी उसकी बहुत हीलना और निन्दा हुई। दर दर भटकती हुई नागश्री के शरीर म सोलह रोग उत्पन्न हुए। मर कर छठी नरक में उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर मत्स्य (मच्छ), सातवीं नरक, मत्स्य, सातवीं नरक, मत्स्य, छठी नरक, उरगादिक के भव बीच में करती हुई पाचवीं नरक से पहली नरक तक, बादर पृथ्वीकाय आदि सब एकेन्द्रियों में लाखों भव करने के पश्चात् चम्पानगरी में सागरदत्त सार्थवाह के सुकुमालिका नाम की पुत्री रूप म उत्पन्न हुई। यौवन वय को प्राप्त होने पर जिनदत्त सार्थवाह के पुत्र सागर के साथ विवाह किया गया किन्तु उसके शरीर का स्पर्श तलवार जैसा उग्र और अग्नि सरीखा उष्ण लगने के कारण सागर ने तत्काल उसका त्याग कर दिया और अपने घर चला गया। इससे सुकुमालिका अति चिन्तित हुई। तब पिता ने उसको आश्वासन दिया और अपनी दानशाला में उसे दान देने के लिए रख दिया।

एक समय गोपालिका आर्या से धर्मोपदेश सुन कर उसे ससार से विरक्ति हो गई। उसने गोपालिका आर्या के पास प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। वह बेला, तेला आदि तप करती हुई विचरने लगी। एक समय अपनी गुरुआनी की आज्ञा के बिना ही शहर के बाहर उद्यान में जाकर सूर्य की आतापना लेने लगी। वहाँ उसने देवदत्ता गणिका के साथ क्रीडा करते हुए पाच पुरुषों को देखा। यह देख कर सुकुमालिका आर्या ने नियाणा कर लिया कि यदि मेरी तपस्या का फल हो तो आगामी भव में मैं भी पाच पुरुषों की वल्लभा (प्रिया) बनूँ। इस प्रकार का नियाणा करके चारित्र (संयम) में भी वह शिथिल होगई। अन्त में अर्धमास की संलेखना करके [illegible] में देवी रूप में उत्पन्न हुई। वहा

कर काम्पिल्य नगर में द्रुपद राजा के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम द्रौपदी रक्खा गया। यौवन वय को प्राप्त होने पर राजा द्रुपद ने द्रौपदी का स्वयंवर करवाया जिसमें द्रौपदी ने युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों को वर लिया अर्थात् पति रूप में स्वीकार कर लिया।

एक समय नारद ऋषि पाण्डवों के महल में आये। सबने खड़े होकर ऋषि का आदर सत्कार किया किन्तु द्रौपदी ने उनका आदर सत्कार नहीं किया। इससे नारदजी को बुरा मालूम हुआ। उन्होंने धातकी खण्ड में अपरकङ्का नगरी के राजा पद्मोत्तर के पास जाकर उसके सामने द्रौपदी के रूप लावण्य की प्रशंसा की। पद्मोत्तर राजा ने देवता की सहायता से द्रौपदी का हरण करवा कर अपने अन्तःपुर में मंगवा लिया। महासती होने के कारण वह उसको वश में नहीं कर सका। कृष्ण वासुदेव के साथ पाँचों पाण्डव अपरकङ्का नगरी में गये और युद्ध में पद्मोत्तर को पराजित करके द्रौपदी को वापिस ले आये। कई वर्षों तक गृहस्थावास में रह कर पाँचों पाण्डवों ने दीक्षा ली और चारित्र पालन कर सिद्धपद को प्राप्त किया। द्रौपदी ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की, अनेक प्रकार की तपस्या करके वह ब्रह्मदेवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुई। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धिपद को प्राप्त करेगी।

इस अध्ययन से यह शिक्षा मिलती है कि नागश्री ने मुनि को कड़वे तुम्बे का शाक बहराया जो महा अनर्थ का कारण हुआ और नारकी, तिर्यञ्च आदि के भवों में उसे अनेक प्रकार के दुःख उठाने पड़े। सुकुमालिका के भव में नियाणा किया जिससे द्रौपदी के भव में उसको मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिए साधु साध्वी को किसी प्रकार का नियाणा नहीं करना चाहिये।

(१७) अश्वों का दृष्टान्त

सतरहवाँ 'अश्वज्ञात' अध्ययन—इन्द्रियों को वश में न करने से अनर्थ की प्राप्ति होती है। यह बतलाने के लिए इस अध्ययन में अश्वों का दृष्टान्त दिया गया है।

हस्तिशीर्ष नाम के नगर में कनककेतु नाम का राजा राज्य करता था। उस नगर में बहुत से व्यापारी रहते थे। एक समय जहाज में माल भर कर वे समुद्र में यात्रा कर रहे थे। दिशा की भूल हो जाने से वे कालिक नाम के द्वीप में पहुँच गए। वहाँ सुवर्ण और रत्नों की खानें थीं और उत्तम जाति के अनेक प्रकार के विचित्र घोड़े थे। वे मनुष्यों की गन्ध सहन नहीं कर सकते थे इसलिए उन व्यापारियों को देखते ही वे बहुत दूर भाग गए। सोने और रत्नों से जहाज को भर कर वे व्यापारी वापिस अपने नगर में आगए।

वहाँ के राजा कनककेतु के पूछने पर उन व्यापारियों ने आश्चर्यकारक उन घोड़ों की हकीकत कही। राजा ने उन घोड़ों को अपने यहाँ मंगाने की इच्छा से उन व्यापारियों के साथ अपने नौकरों को भेजा। वे नौकर अपने साथ बहुत से उत्तम उत्तम पदार्थ लेकर गए और घोड़ों के रहने के स्थान पर उन सुगन्धित चीज़ों को बिखेर दिया और स्वयं छिप कर एकान्त में बैठ गए। इसके बाद घूमते फिरते वे घोड़े वहाँ आए। उनमें से कितनेक घोड़े उन सुगन्धित पदार्थों में आसक्त हो गए और कितनेक घोड़े उनमें आसक्त न होते हुए दूर चले गए। जो घोड़े उन सुगन्धित पदार्थों में आसक्त होगए उनको उन नौकरों ने पकड़ लिया और हस्तिशीर्ष नगर में राजा के पास ले आए। राजा ने [illegible] के पास उन घोड़ों को [illegible] शिक्षा का विनीत [illegible]

यह [illegible]

एक समय श्रमण भगवान् महावीरस्वामी राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में पधारे। धर्मोपदेश सुन कर उसे वैराग्य उत्पन्न होगया। भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की। कई वर्षों तक संयम का पालन कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धिपद को प्राप्त करेगा।

जिस प्रकार धन्ना सार्थवाह ने वर्ण, गन्ध, रस, रूप आदि के लिए नहीं किन्तु केवल अपने शरीर निर्वाह के लिए और राजगृह नगरी में पहुँचने के लिए ही सुसमा बालिका के मांस और रुधिर का सेवन किया था। इसी प्रकार साधु साध्वियों को भी, इस अशुचिरूप औदारिक शरीर की पुष्टि एवं रूप आदि के लिए नहीं किन्तु केवल सिद्धगति को प्राप्त करने के लिए ही आहार आदि करना चाहिए। ऐसे आत्मार्थी साधु साध्वी एवं श्रावक श्राविका इस लोक में भी पूज्य होते हैं और क्रमशः मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

(१९) पुण्डरीक और कुण्डरीक की कथा

उन्नीसवां 'पुण्डरीक ज्ञात' अध्ययन—जो बहुत समय तक संयम का पालन कर पीछे संयम को छोड़ दे और सांसारिक पदार्थों में विशेष आसक्त हो जाय तो उसे अनर्थ की प्राप्ति होती है। यदि उत्कृष्ट भाव से शुद्ध संयम का पालन थोड़े समय तक भी किया जाय तो आत्मा का कल्याण हो सकता है। इस बात को बताने के लिए इस अध्य० में पुंडरीक और कुंडरीक का दृष्टांत दिया गया है।

पूर्व महाविदेह के पुष्कलावती विजय में पुंडरीकिणी नाम की नगरी थी। उसमें महापद्म नाम का राजा राज्य करता था। उसके पुंडरीक और कुंडरीक दो पुत्र थे। कुछ समय पश्चात् राजा महापद्म ने अपने ज्येष्ठपुत्र पुंडरीक को राजगद्दी पर बिठा कर तथा

कुण्डरीक को युवराज बना कर धर्मघोष स्थविर के पास दीक्षा ले ली। बहुत वर्षों तक संयम का पालन कर सिद्धिपद को प्राप्त किया।

एक समय फिर वे ही स्थविर मुनि पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान में पधारे। धर्मोपदेश सुन कर राजा पुण्डरीक ने तो श्रावक व्रत अङ्गीकार किये और कुण्डरीक ने दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद वे जनपद में विहार करने लगे। अन्तप्रान्त आहार करने से उनके शरीर में दाहज्वर की बिमारी उत्पन्न होगई। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक समय वे पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे। स्थविर मुनि को पूछ कर कुण्डरीक मुनि पुण्डरीक राजा की यानशाला में ठहरे। राजा ने मुनि के योग्य चिकित्सा करवाई। जिससे वे थोड़े ही समय में स्वस्थ होगए। उनके साथ वाले मुनि विहार कर गए किन्तु कुण्डरीक मुनि ने विहार नहीं किया और साधु के आचार में भी शिथिलता करने लगे। तब पुण्डरीक राजा ने उन्हें समझाया। पुण्डरीक के समझाने पर कुण्डरीक मुनि विहार कर गये। कुछ समय तक स्थविर-मुनि के साथ उग्र विहार करते रहे किन्तु फिर शिथिलाचारी बन कर वे अकेले ही पुण्डरीकिणी नगरी में आगये। कुण्डरीक मुनि को इस प्रकार शिथिलाचारी देख कर पुण्डरीक राजा ने उन्हें बहुत समझाया किन्तु वे समझे नहीं, प्रत्युत राजगद्दी लेकर भोग भोगने की इच्छा करने लगे।

पुण्डरीक राजा ने उनके भावों को जान कर उन्हें राजगद्दी पर स्थापित किया और स्वयमेव पंचमुष्टि लोच करके प्रव्रज्या अङ्गीकार की। 'स्थविर भगवान् को वन्दना करने के पश्चात् मुझे आहार करना योग्य है' ऐसा अभिग्रह करके उन्होंने पुण्डरीकिणी नगरी से विहार कर दिया। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे स्थविर भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। गुरु के मुख से महाव्रत अङ्गीकार किये।

केलिये गये। भिक्षा में आये हुए अन्तप्रान्त एवं रूक्ष अशनादि का आहार करने से उनके शरीर में दाहज्वर की बीमारी होगई। अर्ध रात्रि के समय शरीर में तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। आलोचना एवं प्रतिक्रमण करके संलेखना संथारा किया। शुभ ध्यान पूर्वक मरण प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध पद को प्राप्त करेंगे।

उधर राजगद्दी पर बैठ कर पुण्डरीक काम भोगों में आसक्त होकर बहुत पुष्टिकारक और कामोत्तेजक पदार्थों का अतिमात्रा में सेवन करने लगा। वह आहार उसे पचा नहीं, जिससे अर्ध रात्रि के समय उसके शरीर में अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। आर्त, रौद्रध्यान ध्याता हुआ पुण्डरीक मर कर सातवीं नरक में गया।

इस दृष्टान्त से शास्त्रकारों ने यह उपदेश दिया कि जो साधु, साध्वी चारित्र ग्रहण करके शुद्ध आचरण करते हैं वे थोड़े समय में ही आत्मा का कल्याण कर जाते हैं। जैसा कि पुण्डरीक मुनि स्वल्प काल में ही शुद्ध आचरण द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। जो साधु, साध्वी संयम लेकर पड़िवाई होजाते हैं अर्थात् संयम से पतित होजाते हैं और कामभोगों में आसक्त हो जाते हैं। वे कुण्डरीक की तरह दुःख पाते हैं और मर कर दुर्गति में जाते हैं। अतः लिये हुए व्रत, प्रत्याख्यानों का भली प्रकार पालन करना चाहिए।

८५२ (ख) वैनयिकी (विणीया) बुद्धि के १५ दृष्टान्त-

निमित्ते अत्थसत्थे अ, लेहे गणिए अकूव अस्से य।
गद्दभ (ह) लक्खण गंठी, अगए रहिए य गणिया ॥
सीया साडी दीहं च तणं, अवसव्वयं च कुंचस्स।
निव्वोदये य गोणे, घोडग पडणं च रुक्खाओ ॥

गाथार्थः—निमित्त १, अर्थ शास्त्र २, लेख ३, गणित ४, कूप ५, अश्व ६, गर्दभ ७, लक्षण ८, ग्रन्थि ९, अगद १०, रथिक और गणिका ११-१२, सूखी साड़ी को ठंडी कहने और तृण को लम्बा कहने, एवं कौंच का वाम भाग में घूमने से आचार्य का बोध १३, विषमय पानी से नार मरण १४, व बैल का चोरी जाना, घोड़े का मरण और वृक्ष से पतन १५,—

इन सब उदाहरणों का कथारूप से स्पष्टी करण इस प्रकार है:—

१ निमित्तेः—निमित्त का दृष्टान्त—जैसे—किसी नगर में एक सिद्ध पुत्र अपने दो शिष्यों को निमित्त शास्त्र पढ़ा रहा था। शिष्यों में एक जो विनय सम्पन्न था वह गुरु के उपदेश को यथावत् बहुमान पूर्वक स्वीकार करता और बाद में अपने चित्त में विचार करते हुए जहाँ भी सन्देह हुआ, तत्काल गुरु के पास जाकर विनय पूर्वक पूछलेता। इस प्रकार निरन्तर विनय और विवेक के साथ शास्त्र पढते हुए उसने तीव्र बुद्धि प्राप्त कर ली। दूसरा इन गुणों से रहित होने के कारण केवल शब्द ज्ञान ही प्राप्त कर सका। एक दिन दोनों गुरु के आदेश से किसी ग्राम' के गाँव में जा रहे थे। मार्ग में किसी बड़े जन्तु के चरण चिन्ह दिखाई देते थे, विनयी शिष्य ने दूसरे से पूछा कि बन्धु! ये' किस के पाँव हैं? उसने कहा इसमें क्या पूछना? ये साफ हाथी के पाँव के चिन्ह दीखते हैं। विनयी ने कहा—नहीं ऐसा नहीं हो सकता, ये हथिनी के चरण चिन्ह हैं और वह हथिनी बाईं आँख से काँणी है तथा उस पर किसी बड़े घर की सधवा स्त्री बैठकर जा रही है और एक दो दिन में ही उसको बालक पैदा होगा क्योंकि उसके मास अब पूरे हो गये हैं। विनयी के ऐसा कहने पर दूसरे ने पूछा—

भ्री ! यह किस पर से समझते हो ? विनयी बोला–ज्ञान का सार ही विश्राम होता है, चलो आगे इसका निर्णय हो जायगा। ऐसा कहकर दोनों उस गाँव में पहुँचे। जाते ही देखते हैं कि गाँव के बाहर तालाब के किनारे किसी रानी का डेरा है और हथिनी भी बाँई आँख से काँणी है, इसी बीच में आकर एक दासी ने मन्त्री से कहा कि स्वामिन् ! राजा को पुत्र लाभ हुआ है, बधाई दीजिये। विनयी ने ऐसा सुनकर दूसरे से कहा कि क्यों बन्धु ? दासी का वचन सुना ? उसने कहा–हाँ, तेरी सब बात सची है। फिर तालाब में हाथ पाँव धोकर दोनों विश्राम के लिए एक वट वृक्ष के नीचे बैठे। उधर से मस्तक पर पानी का घड़ा रक्खे हुए एक बुढ़िया जा रही थी उसने इन दोनों की आकृति व प्रकृति देख कर सोचा कि ये दोनों विद्वान् हैं। अतः इनसे पूछना चाहिए कि मेरा देशान्तर में गया हुआ पुत्र कब लौटेगा ? ऐसा सोच कर पास गई और नम्रता पूर्वक पूछने लगी। उसी समय मस्तक से गिरकर घड़ा टुकड़े २ हो गया तुरन्त दूसरा यह देखकर बोल उठा–माँ ! तेरा पुत्र घड़े की तरह मर गया है। इस पर विनयी ने कहा–मित्र ! ऐसा मत कहो। इसका पुत्र अभी घर पर आया हुआ है और बुढ़िया से भी बोला कि माँ ! घर जाओ और अपने बिछुड़े हुए पुत्र का मुँह देखो।

विनयी की बात से प्रसन्न हुई बुढ़िया उसको आशीर्वाद देती हुई घर गई और उसी समय घर पर आये हुए पुत्र को देखा। पुत्र के प्रणाम करने पर आशीर्वाद देकर बुढ़िया ने नैमित्तिक का कहा हुआ सब वृत्तान्त पुत्र से कह सुनाया। फिर पुत्र को पूछकर कुछ रुपये व वस्त्र युगल

बुढ़िया ने विनयी को अर्पण किये। तब दूसरा सोचने लगा कि—अहो! गुरु ने मुझे अच्छा नहीं पढ़ाया है, अन्यथा जैसा यह जानता है, वैसा मैं भी क्यों नहीं जानता! कार्य हो जाने पर दोनों गुरु के पास आए। गुरु के दर्शन करते ही विनयी ने अञ्जलि जोड़े हुए शिर को नमा कर आनन्दाश्रुपूर्वक गुरु के चरणों में प्रणाम किया। दूसरा शैलस्तम्भ की तरह थोड़ा भी बिना नमे मात्सर्य धरता हुआ गुरु के सामने खड़ा रहा तब उससे गुरु बोले—अरे! क्या आज प्रणाम भी नहीं करता? वह बोला—जिस को आपने अच्छी तरह पढ़ाया है वह ही प्रणाम करेगा, हम ऐसे पक्षपाती गुरु को प्रणाम नहीं करते। गुरु बोले— क्या तुम को अच्छा नहीं पढ़ाया? इस पर उसने पहले का सब हाल कह सुनाया। तब गुरु ने विनयी से पूछा—वत्स! तुमने यह सब कैसे जाना? कहो! वह बोला-गुरुदेव! मैंने आपकी कृपा से विचार करना शुरू किया कि हाथी के तो पाँव दिखते ही हैं किन्तु विशेषता क्या है? फिर उसकी लघुशंका को देखकर निश्चय किया कि ये हथिनी के पाँव हैं। दक्षिण बाजू के मन वृक्ष खाए हुए थे किन्तु बाँई बाजू के नहीं, इससे यह समझा कि बाँई आँख से यह काणी है। साधारण मनुष्य हाथी की सवारी नहीं कर सकता। इससे निश्चय किया कि इस पर राजकीय मनुष्य हैं। वृक्ष पर लगे हुए रंगीन वस्त्र के भाग से सधवा रानी और भूमि पर लघुशंका करने के बाद हाथ टेककर उठने से गर्भवती है तथा दक्षिण चरण और हाथ पर अधिक भार पड़ने से अल्प समय में ही पुत्रोत्पत्ति होगी ऐसा समझा। उस वृद्धा के प्रश्न करते ही जब घड़ा गिरकर टूट गया तब मैंने सोचा कि जैसे घड़े का

इतने वर्ष तक तुम काम करोगे तो दो घोड़े तुम को परिश्रम के बदले दिये जायेंगे। उसने भी यह स्वीकार कर लिया। रहते २ स्वामी की लड़की के साथ उसका बड़ा स्नेह हो गया। एक दिन उसने कन्या से पूछा– इन सब घोड़ों में कौन से दो घोड़े सब से अच्छे हैं? स्वामिकन्या ने कहा– कि यों तो सभी घोड़े विश्वास पात्र हैं, किन्तु दो घोड़े जो वृक्ष से गिराए हुए बड़े पत्थरों के शब्दों को सुन कर भी नहीं डरते वे उत्तम हैं। उसने उसी प्रकार परीक्षा की और उन घोड़ों को पहचान लिया। फिर वेतन लेने के समय में स्वामी से बोला कि मुझे अमुक २ घोड़े दीजिए। स्वामी बोला– अरे! दूसरे अच्छे २ घोड़े हैं। उनको ले, इन दो को लेकर क्या करेगा? ये अच्छे भी नहीं हैं। लेकिन उसने यह बात नहीं मानी। तब सेठ ने सोचा– इसको घर जमाई बना लेना चाहिए, नहीं तो इन उत्तम घोड़ों को लेकर यह चला जायगा। लक्षण सम्पन्न घोड़ों से कुटुम्ब व अश्वसम्पत्ति की भी वृद्धि होगी। ऐसा सोच कर कन्या की अनुमति से उन दोनों का विवाह कर दिया। उसको घर जमाई बनाने से लक्षण सम्पन्न घोड़े बचा लिए गये। यह अश्वस्वामी की विनयजा बुद्धि थी।

६– गंठी– ग्रन्थि के द्वारा समझने में पादलिप्ताचार्य की बुद्धि का दृष्टान्त इस प्रकार है– किसी समय पाटलिपुर में मुरुंड नाम का राजा राज्य करता था। परराष्ट्र के राजा ने एक दिन कौतुक के लिए उसके पास तीन चीजें भेजी। १ गूढ़ सूत्र– (छिपि गाँठ वाला सूत), २ समयष्टि– समयमाग वाली लकड़ी, व ३– लाख से चिपकाया हुआ छिपे द्वार का डिब्बा। राजा ने अपने सभी दरबारियों को ये चीजें दिखाई किन्तु कोई भी नहीं समझ सका। तब राजा ने पाद के

आचार्य को बुलाकर पूछा– भगवन् ! आप इनके ग्रन्थि द्वार जानते हो ? आचार्य ने कहा– हाँ जानता हूँ। ऐसा कह कर उसी समय सूत को गरम पानी में डाला, तो उष्ण पानी के संयोग से सूत का मैल हट गया और अन्त– ग्रन्थि का भाग दिख पड़ा। लकड़ी को भी पानी में गिराया जिससे मालूम हुआ कि मूल भारी है और भारी भाग पर ही ग्रन्थि होती है। फिर डिब्बे को भी गरम करवाया जिससे लाख का सब भाग गल जाने पर द्वार प्रकट हो गया। राजा आदि सभी दर्शक इस कौतुक को देख कर खुश हुए फिर राजा ने आचार्य से कहा– महाराज ! आप भी कोई, ऐसा दुर्ज्ञेय कौतुक करिये जिस को मैं वहाँ भेज सकूँ। तब आचार्य ने किसी तुम्बी के एक प्रदेश में एक खण्ड हटाकर वहाँ रत्न भर दिए तथा उस खण्ड को इस प्रकार सी दिया कि किसी को लक्षित ही नहीं हो। फिर परराष्ट्र के राजपुरुषों को सूचना कर दी कि इसको बिना तोड़े ही इस से रत्न ले लेवें। किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उनको रत्नों का पता नहीं चला। यह आचार्य की विनयजा बुद्धि थी।

१०– अगए– अगद, वैद्य की विषोपशमन बुद्धि का दृष्टान्त जैसे– किसी राजा के राज्य को शत्रुपक्ष के राजाओं ने चारों ओर से घेर लिया छोटे सैन्य से उनका मुकाबला करना अशक्य है। ऐसा सोचकर राजा ने पानी में विषयोग करवाना शुरू किया। सभी लोग अपने अपने पास का विष लाने लगे। एक वैद्य यवमात्र विष लेकर राजा को भेट किया। बहुत थोड़ा विष देख कर राजा वैद्य पर बहुत क्रुद्ध हुआ। तब वैद्य बोला– महाराज! यह विष सहस्रवेधी है। थोड़ा देख कर आप नाराज

न होवें। इस पर राजा ने पूछा– कि इसके सहस्रवेधी होने में क्या सबूत है? वैद्य बोला –देव किसी पुराने हाथी को मँगवाईये। मैं प्रयोग करके दिखाता हूँ। उसी समय एक बूढ़ा हाथी लाया गया और वैद्य ने उसकी पूँछ का एक बाल उखाड़ कर उस बाल में हाथी के भिन्न भिन्न अंगों में विष प्रयोग किया। जिस जिस अंग में विष फैलता गया उन २ अंगों को नष्टसा कर दिया। तब वैद्य बोला– देव! हाथी विषमय हो गया है अब जो भी इसको खायगा वह भी विषमय हो जायगा। इस प्रकार यह विष क्रमश हजार तक पहुँचता है। हाथी की मृत्यु से राजा कुछ उदास होकर बोला– क्या अब हाथी को जिलाने का उपाय भी है? वैद्य बोला– जरूर। उसी बाल के रन्ध्र– (खड्डे) में एक औषध दिया गया जिससे कुछ ही समय में वह विषविकार शान्त हो गया। हाथी अच्छा बन गया और राजा भी वैद्य पर सन्तुष्ट हुआ। यह वैद्य की विनयजा बुद्धि हुई।

११-१२–उदाहरण 'रथिक और गणिका'–पाटलीपुत्र में कोशा नाम की एक वेश्या रहती थी। उसके यहाँ स्थूलभद्र मुनि ने वर्षावास किया और हावभाव से विचलित न होकर उसको उपदेश से श्राविका बनादी, जिससे राज नियोग के सिवाय उसने भी मैथुन के त्याग कर दिए। किसी समय एक रथिक ने राजा को प्रसन्न कर कोशा की माँगणी की। राजा ने भी उसके माँगने पर कोशा को हुकुम दे दिया, किन्तु जब रथिक उसके पास पहुँचा तो वह बारम्बार स्थूलभद्र मुनि की स्तुति करती, परन्तु उसको नहीं चाहती। रथिक अपने विज्ञान से उसको प्रसन्न करने के लिए अशोक वनिका में ले गया और जमीन पर खड़ा २ आम्रवृक्ष से आम्र की लुम्बी को

तोडकर अर्धचन्द्र के आकार से काटली। फिर भी कोशा सन्तुष्ट नहीं हुई और बोली कि शिक्षित को क्या दुष्कर है, देखो म सर्षप की राशिपर सूई में पोये हुए कनेर के फूलों पर नाचती हूँ, ऐसा कह कर उसने सर्षप राशि पर नृत्य कर दिखाया। रथिक हुलस उसकी बहुत प्रशंसा करने लगा, तब वैश्या ने कहा—"आम्र की लुम्बी को तोडना और सर्षप की ढेरी पर नाचना दुष्कर नहीं, किन्तु प्रमदा–समूह म रहकर मुनि बना रहना यह दुष्कर है"। इस पर स्थूलभद्र मुनि का वृत्तान्त कह सुनाया, जिसमें रथिक को भी वैराग्य आगया। यह रथिक और गणिका की विनयजा बुद्धि हुई।

१३–माटी आदि का दृष्टान्त–जैसे– कुछ राजकुमारों को एक कलाचार्य शिक्षण दे रहा था। राजकुमारों ने भी उपकार के बदले में बहुमूल्य द्रव्यों से समय समय पर आचार्य का सम्मान किया। इस प्रकार अपने पुत्रों के बहुमूल्य द्रव्य देने पर क्रुद्ध होकर राजा ने आचार्य को मरवाना चाहा। किसी तरह राज पुत्रों को यह बात मालूम होगई। उन्होंने सोचा कि विद्या दाता होने से आचार्य भी हमारे पिता हैं, अतः इनको विपत्ति से बचा लेना हमारा कर्त्तव्य है। थोडी देर के बाद आचार्य भोजन के लिए आए और धोती मांगने लगे। इस पर कुमारों ने सूखी होते हुए भी कहा-धोती गीली है तथा द्वार के सामने एक छोटा तृण खड़ा करके बोले-तृण बहुत दीर्घ-लम्बा है। ऐसे ही क्रोंच शिष्य पहले सदा आचार्य की दक्षिण ओर से प्रदक्षिणा करता किन्तु अभी वह वामभाग से घूमने लगा। इस प्रकार कुमारों के विपरीत कथन और क्रोंच के वाम भ्रमण से आचार्य समझ गये कि सभी मेरे से विरुद्ध (उलटे) हैं, केवल ये कुमार ही भक्ति बता रहे हैं। ऐसा सोचकर राजा को लक्षित

न हो इस प्रकार से आचार्य चले गए। यह आचार्य और कुमारों की विनयजा बुद्धि हुई।

१४–निव्वोदए–नीव्रोदक–कोतवाल की मृतक परीक्षा का दृष्टान्त–जैसे–बहुत दिनों से किसी वणिक् स्त्री का पति विदेश में गया हुआ था। एक दिन उस वणिक् वधूने कामातुर होकर अपनी दासी से किसी पुरुष को लाने के लिए कहा–दासी भी एक युवावस्था सम्पन्न पुरुष को ले आई। फिर नाई से उसके नख केश आदि का संस्कार करवाया गया। रात में उस पुरुष के साथ सेठानी दूसरे मंजिल पर गई। कुछ समय के बाद उस पुरुष को प्यास लगी। उसने तत्काल बरसा हुआ मेघ का पानी पीलिया। पानी त्वचा में विष वाले सर्प से छुआ गया था। अतः पानी पीने के दूसरे ही क्षण वह पुरुष मर गया। इस आकस्मिक घटना से भयभीत हो, उस वणिक् वधूने रात के पिछले भाग में किसी शून्य देवल में वह शव लेजाकर रखवा दिया। प्रातः काल होते ही लोगों की दृष्टि पड़ी तो तुरन्त कोतवाल को सूचना दी गई। उसने आकर देखा तो मालूम हुआ कि इस मृत पुरुष के नख केशादि थोड़े ही समय पहले बनाये गये हैं। इस पर नाइयों से पूछा गया, उन में से एक ने कहा कि स्वामिन्! अमुक सेठ की दासी के कहने से इसके नख आदि मैंने बनाए हैं। दासी से भी इस बात की जाँच करके भेद खुलवा लिया। यह नगर रक्षक की विनयजा बुद्धि हुई।

१५–गोणे–घोडग (मरणं), पडणं च रुक्खाओ, बैल की चोरी होना, प्रहार से घोड़े का मरण और पुराने वस्त्र के टूटने के कारण वृक्ष से गिरना, इनका अभिप्राय निम्न दृष्टान्त से

समझें—जैसे—किसी गाँव में एक पुण्यहीन पुरुष रहता था। एक दिन वह अपने मित्र से बैल माँगकर हल चलाने गया। कार्य हो जाने पर सन्ध्या के समय बैल को बाडे में लाकर छोड़ दिया। मित्र भोजन कर रहा था। अतः वह उसके पास नहीं गया, केवल मित्र ने बैल को देख लिया है, इस लिये मित्र को बिना कहे ही वह अपने घर चला गया। बैल असावधानी के कारण बाडे से निकल कर कहीं चला गया और चोरों ने मौका पाकर उसको चुरा लिया। मित्र बाडे में बैल को न देखकर उससे माँगने लगा, किन्तु वह कहाँ से देता? क्यों कि वह तो चोरी हो गया था। तब न्याय कराने के लिए वह मित्र पुण्यहीन को राजकुल में ले चला मार्ग में घोड़े पर चढ़ा हुआ एक आदमी सामने से आ रहा था। अकस्मात् घोडे के चौंकने से वह उस पर से गिर गया और घोड़ा भागने लगा। ये लोग सामने आ रहे थे। इस वास्ते उसने कहा कि घोडे को जरा मार कर वहीं रोक रखना। पुण्यहीन ने उसकी बात सुनते ही घोड़े के मर्मस्थल पर एक प्रहार कर दिया। घोड़ा कोमल प्रकृति का होने से प्रहार लगते ही मर गया। अब तो घोड़े वाला भी पुण्यहीन पर अभियोग चलाने को साथ हो गया। जब तक ये लोग नगर के पास आये तब तक सूर्य अस्त हो गया। इसलिए रात में तीनों ही नगर के बाहर ठहर गये। वहाँ बहुत से नट सोए हुए थे। उसी समय वह पुण्यहीन सोचने लगा कि इस प्रकार के दुःख से तो गले में पाश डाल के मर जाना ही अच्छा है, जिससे कि सदा के लिए विपत्ति का पिण्ड ही छूट जाय। ऐसा सोचकर अपने वस्त्र का वृक्ष में पाश बाँ[illegible]ने में डाल लिया। परन्तु जीर्ण होने से वह व[illegible] ही

टूट गया। इससे वह बेचारा नीचे सोए हुए एक नट के मुखिया पर जा गिरा, जिससे वह नट मर गया।

नटों ने भी उस पुण्यहीन को पकड़ा और सुबह होते ही तीनों पुण्यहीन को लिए हुए राजकुल में पहुँचे। राजकुमार ने उन सबों की बातें सुनकर पुण्यहीन से पूछा। उसने दीनता के साथ कहा कि महाराज! इन सब का कहना सच्चा है। तब राजकुमार उस पर दया करके उसके मित्र से बोले कि यह तुमको बैल देगा, किन्तु, तुम्हारी आँखें उखाड़ देगा, क्योंकि जिस समय तुमने अपने सामने बैल देख लिया उसी समय यह ऋण मुक्त हो गया। अगर तुम नहीं देखे होते तो यह भी अपने घर नहीं जाता। क्योंकि जो जिस को कुछ देने के लिए आता है वह बिना उसको समझाए अपने घर नहीं जा सकता। इसने तुम्हारे सामने लाकर बैल छोड़ा था। अतः यह निर्दोष है। फिर घोड़े वाले को बुलाया और कहा कि हम तुम्हारा घोड़ा दिलायेंगे, लेकिन तुमको अपनी जीभ काट कर इसको देनी होगी। क्योंकि तुम्हारे कहने पर ही इसने घोड़े पर प्रहार किया है बिना कहे नहीं, अतः तुम्हारी जीभ ही पहले दोषी होती है, उसको उखाड़ कर अलग कर देना चाहिए। इसी प्रकार नटों को बुलाकर कहा— देखो, इसके पास कुछ भी नहीं, जो तुम को दण्ड में दिलाए, इसलिए इतना ही कहता हूँ कि जैसे — गले में पाश डालकर यह वृक्ष से तुम्हारे स्वामी पर गिरा, इसी प्रकार तुम्हारे में से कोई भी प्रधान इस पर वृक्ष से गिरे, यह नीचे सो जायगा। कुमार की ऐसी बातें सुनकर सभी चुप हो गये और वह पुण्यहीन अभियोग से मुक्त हो गया। यह राजकुमार की वैनयिकी बुद्धि हुई। (नन्दी सू. हस्तिमलजी कृत)